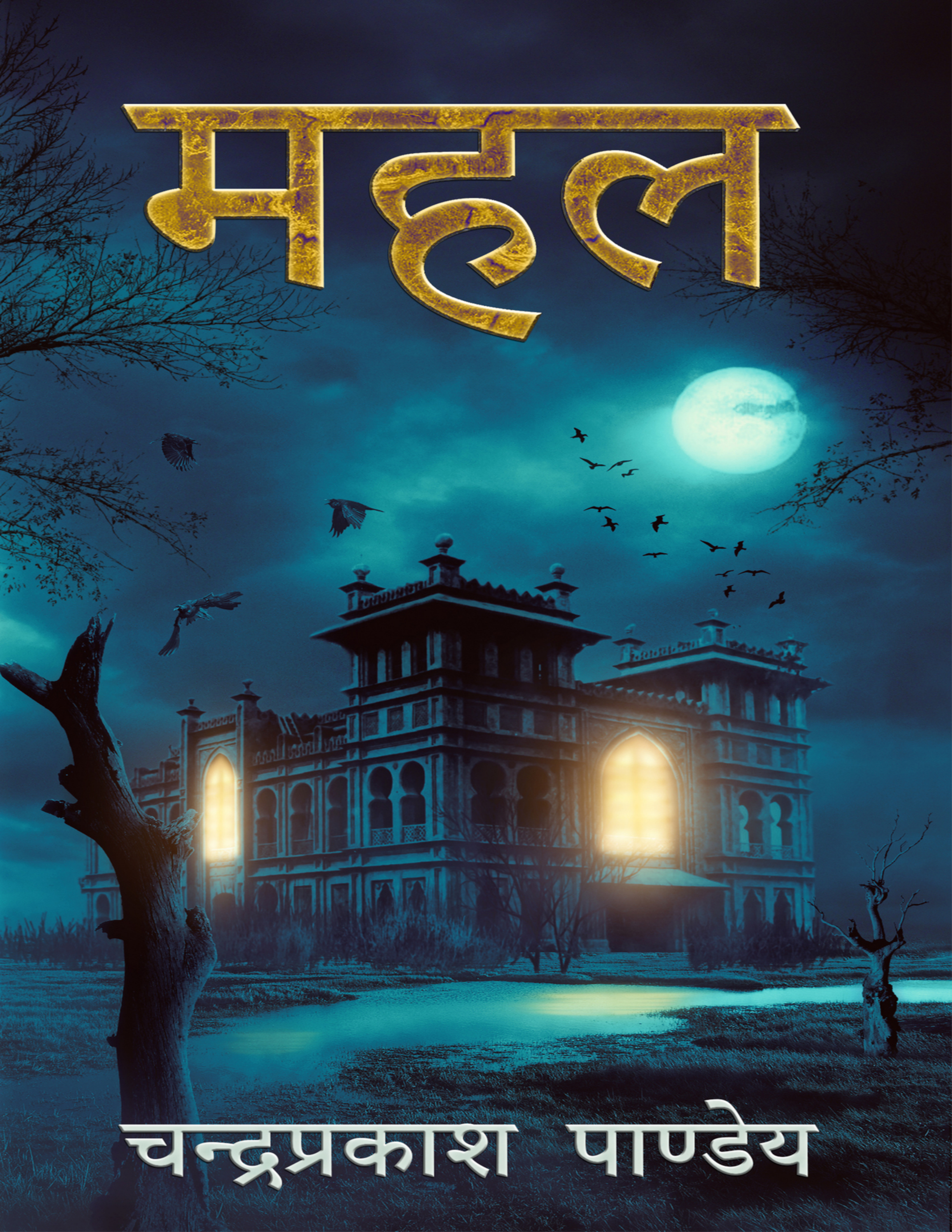
महल
चन्द्रप्रकाश पाण्डेय

“वह अँधेरी दुनिया के रहस्यों का इतना बड़ा ज्ञाता था कि काला लिबास पहनकर, अँधेरे की काली स्याही खुद पर उड़ेलकर अँधेरे का ही एक हिस्सा बन गया था।”

- इसी उपन्यास से

महल

चन्द्रप्रकाश पाण्डेय

थ्रिल वर्ल्ड

©2022 चन्द्रप्रकाश पाण्डेय

उपन्यास: महल
उपन्यासकार: चन्द्रप्रकाश पाण्डेय

प्रथम संस्करण अप्रैल 2022 में भारत में थ्रिल वर्ल्ड द्वारा प्रकाशित

सभी अधिकार सुरक्षित हैं। इस पुस्तक का कोई भी अंश, पूर्ण अथवा आंशिक रूप से, लेखक की लिखित पूर्वानुमति के बगैर पुनः प्रकाशित करना, प्रति निकालना, वितरण करना, फोटोकॉपी, रिकॉर्डिंग, फिल्मांकन अथवा किसी भी अन्य मेकेनिकल या इलेक्ट्रॉनिक माध्यम के रूप में पुनः उपयोग नहीं किया जा सकता है। किसी के भी द्वारा, किसी भी माध्यम में इस कहानी का उपयोग करना निषिद्ध है। इस पुस्तक से संबंधित किसी भी विवाद के निपटारे का न्यायक्षेत्र केवल वाराणसी होगा।

यह एक काल्पनिक किताब है। स्थानों और संस्थाओं के नामों का प्रयोग केवल कथ्य को प्रमाणिकता प्रदान करने के लिये किया गया है। कहानी में आये सभी चरित्र, नाम और घटनायें लेखक की कल्पना पर आधारित हैं और किसी भी जीवित या मृत व्यक्ति से किसी भी प्रकार का संबंध एक संयोग मात्र होगा। उपन्यास में वर्णित समस्त घटनायें कल्पित हैं और किसी भी वास्तविक घटना से प्रेरित नहीं हैं। उपन्यास किसी भी अंधविश्वास या मान्यता का प्रचार न करते हुए मात्र मनोरंजन हेतु उद्दिष्ट है।

कवर © चन्द्रप्रकाश पाण्डेय
आतंरिक पृष्ठसज्जा: चन्द्रप्रकाश पाण्डेय

मुद्रण व जिल्दसाजी: मणिपाल टेक्नोलॉजीज लिमिटेड , मणिपाल

थ्रिल वर्ल्ड
भारत में मुद्रित

सिर्फ़ उन लोगों के लिए,
जिन्हें अँधेरी दुनिया की कहानियाँ रोमांचित करती हैं।

कथानक से पूर्व

P

प्रिय पाठकों,

सप्रेम नमस्कार! एक नये पैरानॉर्मल थ्रिलर 'महल' के साथ आपकी अदालत में हाजिर हूँ, इस विश्वास के साथ हाजिर हूँ कि मेरे उपन्यासों से आपको जो अपेक्षाएं होती हैं, वे अपेक्षाएं इस बार भी पूर्ण होंगी। इससे पहले मेरा आख़िरी उपन्यास 'रक्ततृष्णा' था, जिसमें मैंने लोककथाओं और किंवदंतियों में हमेशा खलचरित्र के रूप में दर्शाई जाने वाली 'डायन' को एक नये दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया था। मैं खुशकिस्मत रहा कि आपको वह दृष्टिकोण पसंद आया और आपने 'रक्ततृष्णा' को मस्टरीड के तमगे से नवाजा। सिर्फ इतना ही नहीं 'रक्ततृष्णा' मेरी पहली ऐसी रचना रही, जिसे अमेजन की ओर से तीन-तीन बार हॉरर कैटगरी में नंबर वन बेस्टसेलर का रॉयल टैग हासिल हुआ। 'रक्ततृष्णा' की ये सफ़लता आप सभी पाठकों को समर्पित है।

कुछ सालों पहले तक हिंदी की हॉरर विधा हासिये पर जरूर रही थी लेकिन विविधता की तलाश में रहने वाले पाठकों द्वारा अब इस विधा को भी तवज्जो दी जाने लगी है, जो यकीनन एक शुभ संकेत है और मैं इस बात को लेकर बेहद आशान्वित भी हूँ कि जल्द ही हॉरर विधा हमारी मातृभाषा हिंदी में भी उतनी ही समृद्ध होने वाली है, जितनी कि अंग्रेजी या अन्य भाषाओं में है। मेरे आशान्वित होने की एक अहम् वजह ये भी है कि वर्तमान में इस विधा में श्रीमती वर्षा जी, श्री आलोक सिंह खालौरी, श्रीमती शोभा शर्मा मैम, श्री मनमोहन भाटिया सर, श्री देव प्रसाद, श्री विकास भांती, श्री दिलशाद दिलसे, श्री आनंद उषा बोरकर, श्रीमती हेमा श्रीवास्तव इत्यादि ऐसे अनगिनत प्रतिभाशाली और अनुभवी लेखक सक्रीय हैं, जो इस विधा को संवारने में निरंतर अपना योगदान दे रहे हैं और अनवरत ऐसी भयकथाओं का सृजन कर रहे हैं, जो हिंदी में चंद वर्षों पहले तक दुर्लभ कही जाती थीं। ये होना भी चाहिए क्योंकि इस क्षण, जब पूरी दुनिया बदलाव के दौर से गुजर रही है, राजनीतिक हलचलों से काँप रही है तो भला लोकप्रिय साहित्य का फलक इस परिवर्तन से अछूता कैसे रह सकता है। एक हॉरर लेखक के तौर पर मेरी आपसे गुजारिश है कि आप इस विधा को और इसके लेखकों को आगे भी मौक़ा देते रहें। इसे अछूत न समझें, बल्कि इसे समझें क्योंकि इस विधा में मनोरंजन की ऐसी असीम संभावनाएं छिपी हुई हैं, जिन्हें अभी तक ढंग से भुनाया नहीं जा सका है।

अब एक नजर उन पाठकीय प्रतिक्रियाओं पर डालते हैं, जो 'रक्ततृष्णा' पर आयी हैं।

ब्लॉगर श्री सुनील जी ने अपने ब्लॉग पर उक्त उपन्यास की विस्तृत समीक्षा लिखी है, जिसका प्रमुख अंश यहाँ प्रस्तुत है:

'चन्द्रप्रकाश पाण्डेय आज के पाठकों में अपनी एक अलग पैठ बना चुके हैं और इनके उपन्यास पाठकों का मनोरंजन करने में अच्छे-खासे सफल रहे हैं। विशेषतः हॉरर एवं

पारलौकिक शक्तियों की श्रेणी में इनका लेखन प्रशंसनीय और कामयाब दोनों रहा है। 'रक्ततृष्णा' चन्द्रप्रकाश पाण्डेय की लेखनी से निकला एक ज़बरदस्त हॉरर नॉवेल है, जो आपको डायन की हक़ीक़त से रूबरू कराएगा।'

इसी क्रम में ब्लॉगर श्री गुरप्रीत सिंह प्रीत जी ने भी अपने ब्लॉग पर 'रक्ततृष्णा' की विस्तृत और रोचक समीक्षा प्रकाशित की है, जिसका कुछ अंश प्रस्तुत है:

'अगर हम कहें कि चन्द्रप्रकाश पाण्डेय ने लोकप्रिय उपन्यास साहित्य में हॉरर साहित्य को एक नया आयाम दिया है, सार्थक और तर्कसंगत कहानियों के साथ इस साहित्य को स्थापित किया है तो यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नहीं है।

चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी ने परम्परागत चली आ रही डरावनी कहानियों को जो नया रूप दिया है, उसमें कथा भी है और तर्क भी है। और वह कथा और तर्क पाठकों को प्रभावित करने में सक्षम भी हैं।

हॉरर उपन्यासों की श्रेणी पारलौकिक में चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी वर्तमान में एक सक्षम और सशक्त हस्ताक्षर बन कर उभरे हैं।

'रक्ततृष्णा' हॉरर श्रेणी में एक अलौकिक (Paranormal) कथा है। यह आम प्रचलित हॉरर कथाओं से अलग और तर्कपूर्ण कहानी है। उपन्यास की कहानी कसावट, तीव्रता और रहस्य से परिपूर्ण है।'

हनुमानगढ़, राजस्थान से श्री विशाल भारद्वाज जी लेखकों तक अपने विचार पहुँचाने के लिए परंपरागत तरीका चुनते हैं अर्थात ये ई-मेल के जरिये बड़े ही सलीके से अपने विचार रचनाकार को भेजते हैं। 'रक्ततृष्णा' के संदर्भ में यही उन्होंने मेरे साथ भी किया, जिसे मैं हूबहू आपके सामने रख रहा हूँ:

'पाण्डेय जी, नमस्कार!

आज रविवार सुबह की शुरूआत 'रक्ततृष्णा' से डरते-डरते की, क्योंकि मैं हॉरर श्रेणी की रचनाएं बहुत ही कम पढ़ता हूँ। हाँ, भय की वजह से और दूसरा उनमें ऊलजुलूल बे-सिर पैर के वीभत्स, जुगुप्सा जगाते वाकयात के कारण, पर इसे जब पढ़ना शुरू किया तो बीच-बीच कुछ अंतराल के बीच डिनर तक खत्म करके ही रखा।

आपकी पिछली रचनाओं के अनुभव के कारण 'रक्ततृष्णा' पढ़ने की तो तीव्र उत्कंठा ही थी कि इस बार क्या कथानक लाये होंगे, और इस बार मिली 'विचक्राफ्ट' और 'डायन' सरीखे संवेदनशील विषयों पर एक निहायत ही शानदार और दिल छू लेने वाली कहानी और इसका प्रस्तुतिकरण भी साँसें रोक देने वाला, जिसमें सिर्फ खून-खून नहीं, सिर कटी लाशों के नृत्य नहीं बल्कि जादू, प्राचीन विद्याओं का पुरातत्व के साथ सम्बन्ध और 'यक्षिणी मन्दिर' की परिकल्पना; पाण्डेय जी आपने सदा के लिए अपना मुरीद बना लिया है मुझे तो।

कुल मिलाकर कहानी में ग़ज़ब कसावट, बेहतरीन संवाद, तेजी से घटित होती घटनाएं, प्राचीन से वर्तमान तक का सफर और उनका अद्भुद तारतम्य अंत तक बांधे रखता है। भाई साहब, शब्दहीन हो गया हूँ कि किन अल्फ़ाज़ में आपकी लेखनी की तारीफ करूँ, और तारीफ करूँ आपकी कल्पनाशक्ति और शोध का, जिनके मेल से एक बार फिर से 'रक्ततृष्णा' सरीखी शानदार रचना का जन्म हुआ है।

बधाई, और कामना है कि सालासर वाले बालाजी का आशीर्वाद आप पर हमेशा बना रहे। अगला उपन्यास कौन सा और कब आ रहा है, 'मृत्युग्रन्थ' की तो प्रतीक्षा है ही।

पुनश्च: आप अगले उपन्यास से लेखकीय अवश्य शामिल करें।

भवदीय

विशाल भारद्वाज

श्री विशाल जी, आपकी भावपूर्ण समीक्षा और आशीर्वचनों के लिये बहुत-बहुत आभार। 'लेखकीय' इस उपन्यास में शामिल किया जा चुका है और ये सिलसिला अब अनवरत चलेगा। आपके अन्य जिज्ञासाओं का समाधान मेल के जवाब में दिया गया था, आशा है मेल देखा रहा होगा आपने।

श्री राजीव कुमार सिंह जी ने भी ई-मेल के जरिये बताया:

'हाल ही में 'रक्ततृष्णा' पढ़ी, जबरदस्त लगी। आपने डायन की एक सकारात्मक छवि को प्रस्तुत किया। हॉरर और पैरानॉर्मल उपन्यासों में आपकी जानकारी और पकड़ लाजवाब है, चाहे वो 'फिर वही खौफ हो' या आवाज़।'

बिलासपुर, छत्तीसगढ़ से मेरे नियमित पाठक एवम् घनिष्ठ मित्र श्री हरीश यादव जी ने व्हाट्सएप मेसेज के जरिये अपने विचार मुझ तक पहुँचाये, जिसे हूबहू कॉपी करके यहाँ पेस्ट कर रहा हूँ:

'बहुत सुगठित कहानी है। अत्यंत रोचक, कई स्थानों पर ख़ासी डरावनी भी और समय बढ़ते-बढ़ते रोमांच, रहस्य और आनंद सब एक साथ क्रमशः बढ़ता जाता है। जितना वर्तमान काल का कथानक है, उससे भी अधिक मज़ेदार, रोचक और तृप्तिदायक कथानक प्राचीन काल का है। अगर आगे इसका विस्तार किसी अगली कथा में हो तो और भी सोने पर सुहागा हो जाए।

बहुत शानदार, तार्किक और एक सकारात्मक किताब के लिए बहुत-बहुत बधाई। एक जटिल, भ्रांत और नकारात्मक आवरण में लिपटी अवधारणा को आपने न्यायपूर्वक सकारात्मक ढाँचा प्रदान किया, इसकी पृथक से बधाई।'

सहारनपुर से श्री भूपेन्द्र प्रताप जी ने भी 'रक्ततृष्णा' को तारीफ़ और शुभकामनाओं से नवाजा:

'रेसिपी बहुत ही शानदार थी। एक बार शुरू करने के बाद छोड़ ही नहीं पाया हालाँकि उपन्यास के अंत में प्रियदर्शिनी के बारे में पढ़कर लगा कि कहानी अभी और बढ़ेगी किन्तु

कहानी अचानक से ख़त्म हो गयी। कथानक बहुत ही रोचक था। इस जॉनर में इंडिया में आपसे बेहतर कोई नहीं लिख सकता, आप बेस्ट हैं। आप का लिखा अविश्वसनीय होते हुए भी विश्वसनीय लगता है। शानदार कथानक गढ़ने के लिए बधाई, आप लिखने में देरी करते हैं लेकिन दुरुस्त लिखते हैं। पुस्तक की शुरूआत में मुझे विशेष आभार देने के लिए धन्यवाद। हालाँकि मेरा कोई योगदान आपके कथानक में नहीं था लेकिन ये आपके उदार हृदय का परिचायक है, एक बार फिर से बधाई।'

थ्रिल वर्ल्ड पब्लिकेशन के व्हाट्सएप ग्रुप के जरिये भी कुछ पाठकों ने अपनी राय से मुझ तक पहुँचायी, गौर फरमाएं।

भटिंडा, पंजाब से श्री भूपिंदर सिधु जी ने पोस्ट किया:

'रक्ततृष्णा ख़त्म किया, एक तेज तर्रार मूवी की तरह कब ख़त्म हुआ, पता नहीं चला, हालाँकि डायन ने उतना नहीं डराया, जितना शैतान ने डराया था। पाण्डेय जी का गाली लिखने का स्टाइल पसंद आया, जैसे कि भाग तेरी महतारी %#&$।' लाला ने बहुत हँसाया। कुछ जगह थोड़ा कन्फ़्यूज़न भी था, जैसे नौकर का मेंटलिस्ट और मज़दूर का बोलना कि बहुत हार्ड टार्गेट दिया है। शायद नौकर और मज़दूर कुछ ज़्यादा ही पढ़े लिखे थे। साकेत को होश सुबह आता है लेकिन बज शाम के छः रहे होते हैं। हमेशा की तरह सस्पेन्स अंत तक बरक़रार रहा, कुछ सीक्वन्स डराने में क़ामयाब रहे। अंत में यहीं कहना चाहूँगा कि यह एक पैसा वसूल नॉवेल है।'

मेरठ, उत्तर-प्रदेश से श्री आलोक सिंह जी ने पोस्ट किया:

'अभी-अभी चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी की 'रक्ततृष्णा' पढ़कर समाप्त की। सीधे सपाट शब्दों में- बहुत अच्छी किताब है। हॉरर के नाम पर आम तौर पर प्रचलित मारकाट और अनावश्यक हिंसा से परे एक शानदार उपन्यास। हॉरर के स्थान पर मैं इसे रोमांचक और रहस्यमय थ्रिलर कहना पसंद करूँगा। बाकी भाषा शैली तो आप लोग जानते ही हैं पाण्डेय जी की कि उत्कृष्ट है, उसका अलग से उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बाकी कमी के नाम पर मात्र एक त्रुटि है, लेखक ने हजार के नोट चलवाये है नायक से। बाकी चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी को धन्यवाद, इतनी अच्छी रचना लिखने के लिए।'

विदित हो कि श्री आलोक जी स्वयं भी एक परिपक्व लेखक हैं और 'राजुमुनि', 'वो' तथा 'तरकीब' सरीखी रचनाओं के जरिये लगातार पाठकों की प्रशस्तियाँ बटोर रहे हैं।

पटना, बिहार से श्री शशि भूषण कुमार जी ने पोस्ट किया:

'रक्ततृष्णा पढ़ी रात में। बहुत बढ़िया किताब। एक बैठक में खत्म किया। मजा आ गया।'

राजस्थान से श्री अभिषेक शर्मा जी ने किताब की लम्बी-चौड़ी समीक्षा पोस्ट की, जिसके महत्वपूर्ण बिंदु प्रस्तुत हैं:

‘पाण्डेय जी, ध्यान रहे आपसे उम्मीदें बहुत ज्यादा बढ़ गयी हैं अब। हिदी साहित्य में हॉरर शैली छोड़ चुकने के बाद आपकी किताबों से वापसी की इस विधा में और यकीन मानिए, कोई किताब कहीं भी निराश नहीं करती। ‘अनहोनी’ जरूर अंत में जाकर थोड़ा प्रेडिक्टेबल हो गयी थी। ‘रक्ततृष्णा’ की बात करें तो कहानी का हर अध्याय अगले के लिए कोई न कोई कड़ी छोड़ता जाता है। सबसे अच्छा जो लगा, वह है कहानी का धाराप्रवाह होना। एक लय, जो न तो कहीं बिगड़ती है और न ही थमती है। सुपरनेचुरल + हॉरर + सस्पेंस, तीनों विधा का एक ही किताब में शानदार तड़का।’

भोपाल के श्री आबिद बेग जी किताबों और लेखकों से विशेष लगाव रखते हैं और बिना किसी भेदभाव या छिन्द्रान्वेषण के तकरीबन हर लेखक को पढ़ते हैं तथा तस्वीर सहित फेसबुक पर विचार भी साझा करते हैं। ‘रक्ततृष्णा’ को लेकर उन्होंने जो फरमाया, पेश है:

‘हॉरर उपन्यासों में आम तौर पर डर उत्पन्न करने के लिए तयशुदा शब्दों जैसे लालटेन का अचानक से बुझ जाना, चूं चर्रर की आवाज़ों के साथ खुलते बंद होते दरवाज़े, अँधेरे में चमकती बिल्ली की आँखें, भयानक आवाज़ करते हुए चमगादड़ों का आसमान में उड़ जाना, पेड़ पर उल्टी लटकी चुड़ैल अथवा प्रेतात्मा, बुड्ढा साधु, अभिमंत्रित चाकू या तलवार आदि से परे चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी का उपन्यास एक ताज़ी हवा के झोंके की तरह हैं। प्रस्तुत उपन्यास ‘रक्ततृष्णा’ की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है।’

अमेजन पर प्राप्त हुए रिव्यु के क्रम में श्री कपिल कुमार गुप्ता जी ने लिखा:

‘रक्ततृष्णा, डायन को केंद्रित कर के लिखी गयी एक जबरदस्त हॉरर थ्रिलर है जो पाठकों को शुरू से लेकर अंत तक बांधे रखती है। हमारे पौराणिक कहानियों और इतिहास में डायन को लेकर जो मिथक और सच्चाई है, उसको शानदार तरीके से वर्णित किया गया है। नॉवेल में कई घटनाओं और दृश्यों का ऐसा वर्णन है, जो पाठको के रोंगटे खड़े कर देगा। वैसे अंत थोड़ा और भी रोचक और सनसनीखेज होता तो ज्यादा मजा आता। हॉरर लवर, पाण्डेय जी के इस बुक को मिस नही कर सकते।’

श्री रामकुमार राठौर जी ने लिखा:

‘दिलचस्प कथानक, ऐसा कि पाठक को अपने मोहपाश में शुरू से अंत तक बांधे रखता है। एक के बाद एक घटती घटनाएं सांस लेने की भी फुर्सत नहीं लेने देतीं। हर एक रहस्य का सिलसिलेवार ढंग से समाधान भी होता जाता है और फिर से एक नया रहस्य अपना सिर उठा लेता है। कोई कितनी भी कोशिश कर ले कथानक में एक भी नुक्स नही निकल सकता है। उत्कृष्ट शैली, सरल भाषा; कुल मिलाकर ऐसा उपन्यास, जो अपने कथानक की तासीर से पाठकों को लंबे समय तक ठंडक प्रदान करता रहेगा।’

श्री ओम सिंह जी ने लिखा:

‘कहानी पूरी तरह से कसी हुई। सुनस्त्रा का किरदार बहुत रहस्य भरा हुआ था।

उसके साथ साकेत की समझ बढ़िया रही। पटकथा पूरी तरह कसी हुई थी। खासतौर पर कहानी ने जब दामोदर की तरफ मोड़ लिया, उस समय लगा कि कहीं जरूरत से ज्यादा एक्शन तो नहीं है पर लेखक की शानदार लेखनी ने थ्रिलर की तरफ मोड़ कर कमाल कर दिया। कुल मिलाकर पढ़ने में मजा आया। रोचक और फाइव स्टारर कहानी, जरूर पढ़ें।'

श्री उमेश यादव जी ने लिखा:

'नॉवेल की स्टोरी अच्छी थी, पढ़ने में मजा आया। आपके नेक्स्ट नॉवेल 'मृत्युग्रंथ' का वेट कर रहा हूँ। आल द बेस्ट फॉर नेक्स्ट नॉवेल।'

श्री केविन कनेरिया जी ने लिखा:

'मैंने चन्द्रप्रकाश पाण्डेय जी की तीन रचनाएं पढ़ी है और मैं हैरान हूँ कि कोई इतनी उत्कृष्ट कहानियाँ कैसे लिख सकता है। पाण्डेय जी की इमेजिनेशन का तो जवाब ही नहीं। वे सच में हॉरर जॉनर में श्रेष्ठ लेखक है। उनकी सभी रचनाओं की मानिंद 'रक्ततृष्णा' भी हटकर है। बिना सोचे कहानी पढ़ डालिए, कहानी मनोरंजन से भरपूर है। कहानी आपको दूसरी दुनिया में ले जायेगी। आप कहानी खत्म किए बिना सो नहीं पाएंगे।'

श्री राहुल जैन जी ने लिखा:

'Not as good as other books by him.. but still thrilled to read it.. waiting for Avantika's next part.'

श्री नितेश झा जी ने लिखा:

'अन्य रचनाओं की तरह यह भी साँसें थामकर पढ़ने वाला उपन्यास है। रोचकता का अंदाज़ आप इसी बात से लगा सकते हैं कि इस वक्त, जब भारत पाकिस्तान का क्रिकेट मैच चल रहा है, मैंने इसे पढ़कर खत्म किया है। बहुत-बहुत धन्यवाद सर और ढेरों शुभकामनाएं।'

देहरादून से श्री कैलाश चन्द्र सारस्वत जी ने मैसेंजर के जरिये अपने विचार साझा किये:

'पाण्डेय जी, नमस्कार!

आपकी बुक 'रक्ततृष्णा' पढ़ी। बेहद ही उम्दा कथानाक के साथ उत्कृष्ट भाषा मे एक सम्पूर्ण उपन्यास है। हमेशा की तरह आपकी लेखनी में इस बार भी जादू दिखा। पढ़कर बड़ा मजा आया। पर इसमें कुछ बिल्कुल निम्न स्तर की गलतियां मुझे दिखीं, जैसे:

अगर कामिनी पूजा करती है तो वो रात को साकेत को हवेली में कैसे दिख सकती है? जबकि पूजा तो सुनस्त्रा के अनुसार सुबह तक चलती है।

सुनस्त्रा, साकेत का हाथ पकड़कर फ्लैशबैक में कहानी सुनाती है पर जब खत्म करती है तो प्रियदर्शनी का हाथ छोड़ती है।

बाकी उपन्यास पढ़कर बड़ा मजा आया। अभी तक उसी डायन की कहानी दिमाग मे घूम रही है। अगर प्रियदर्शनी और साकेत का प्रेम भी दिखाते तो शायद थोड़ा डर के साथ रोमांस भी पढ़ने को मिलता।'

उपर्युक्त पाठकों के अलावा श्री कुनाल के. जी, श्री जिंतेंद्र शर्मा जी, श्री वसीम गौस जी, रॉयल ब्लू साहब, श्री सुरेश कुक्रेती जी इत्यादि पाठकों को भी 'रक्ततृष्णा' ने अपने कथानक और कथाशिल्प दोनों से मुतमईन किया, आप सभी सुधी पाठकों का अशेष आभार।

'महल' कैसा लगा, अवश्य बताएं।

विनीत
चन्द्रप्रकाश पाण्डेय
pandeychandraprakash25@gmail.com

प्रस्तावना

हसीनाबाद, मुगलकालीन उत्तर भारत।

उस वक्त रात आधी से अधिक गुजर चुकी थी, जब महल में हुई तेज हलचल सुल्तान आलमबेग की नींद में खलल का सबब बन गयी।

“ये क्या बदतमीजी है?” दहाड़ता हुआ सुल्तान नींदगाह से बाहर आया।

एक ताबेदार, जो वाकये की खबर करने के लिए सुल्तान के कमरे की ही ओर आ रहा था, सुल्तान को खुद बाहर आया देख चाल में तेजी लाकर उसके करीब पहुँचा और छाती पीटते हुए बोला- “श....शा...शाहजादी..महविश।”

“क्या हुआ उन्हें?” सुल्तान घबराया और किसी मनहूस खबर के साथ आये उस ताबेदार का गिरहबान थाम लिया- “फ़ौरन अर्ज करो।”

“शाहजादी महविश अपनी नींदगाह में लहुलुहान हैं।” ताबेदार ने खौफ खाते हुए कहा।

‘शाहजादी लहुलुहान हैं?’ सुनते ही सुल्तान सन्न रह गया। कई पलों तक खामोश रहकर ताबेदार को घूरता रहा और फिर जब उसका गिरहबान छोड़कर वहाँ से गायब हुआ तो सीधा शाहजादी के कमरे के सामने नुमाया हुआ, जहाँ ताबेदारों, बांदियों और सिपाहियों का हुजूम पहले ही जमा हो चुका था। सुल्तान अंदर दाखिल होने को हुआ ही था कि बांदियों द्वारा रोक दिया गया।

“शाहजादी अभी दीदार की हालत में नहीं हैं सुल्तान। उनके बदन पर मौजूद कपड़े तार-तार हैं। हकीम साहिबा को बुलावा भेजा गया है।”

“कोई ज्यादती पेश आयी है क्या उनके साथ?” सुल्तान ने तड़पकर पहलू बदला।

“शाहजादी की नींदगाह में कोई दाखिल नहीं हुआ था सुल्तान।” पहरे पर बहाल सिपाही ने कांपते हुए कहा- “हम पूरी तरह मुस्तैद थे।”

“तो फिर ये कैसे मुमकिन हुआ कि कोई नामुराद शाहजादी को लहुलुहान कर गया?”

“हमारे भी हैरत की इन्तहा नहीं है सुल्तान।” दूसरे सिपाही ने सुल्तान से निगाहें चुराते हुए कातर लहजे में कहा- “हम आपसे बयां करते हुए भी खौफ खा रहे हैं।”

“फ़ौरन बयां करो।” सुल्तान जबड़े भींचते हुए बोला।

“हम रोज की मानिंद अपने पहरे पर तैनात थे।” इससे पहले कि सुल्तान उनके खिलाफ़ कोई फरमान जारी कर देता, एक सिपाही ने मुँह खोला- “हमें किसी नाखुशगवार वाकये

का अंदाजा तब हुआ, जब हमने नींदगाह से शाहजादी की सिसकियां सुनीं। कायदे का लिहाज करते हुए हमने तुरंत भीतर दाखिल न होकर, बाहर से ही उन्हें आवाज दी लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला। शाहजादी की सिसकियाँ यूँ घुटी-घुटी सी थीं, मानो उन्हें जिबह किया जा रहा हो।'' सिपाही ठहरकर भय से शुष्क हो रहे अपने हलक को गीला करने लगा। इस दरम्यान एक दूसरे सिपाही ने बातों का सिलसिला आगे बढ़ाया- ''हम किसी ख्याल पर टिक पाते उससे पहले ही हमने परदे के उस पार शाहजादी का अक्स देखा।'' कहने के साथ ही सिपाही के चेहरे पर खौफ ने पारवाज किया- ''नींद और मदहोशी के आलम में वो...वो खुद अपने बदन पर खंजर चला रही थीं।''

''क्या बकवास कर रहे हो?'' सुल्तान बिफर पड़ा- ''अपनी जहालत को यकीन न आने वाली कहानी की आड़ में छुपा रहे हो?''

''यकीन करें सुल्तान, हम सही फरमा रहे हैं। हमने शोर मचाकर इस बांदी को भी जगाया, जो शाहजादी के साथ सोती है।''

सुल्तान का रुख अभीष्ट बांदी की ओर हुआ।

''इनके बयान दुरुस्त हैं सुल्तान।'' बांदी, सुल्तान का आशय भांपकर बोली- ''जब तक हम नींद के आगोश से बाहर आये, तब तक शहजादी अपने कपड़े तार-तार कर चुकी थीं। बदन पर बेशुमार जख्म बना चुकी थीं।''

''मगर क्यों?'' सुल्तान चीखा और इसी के साथ बांदी काँप गयी- ''क्यों किया उन्होंने ऐसा? क्या उनकी जेहनी हालत ठीक नहीं थी, क्या कोई साया आया था उन पर, जो वे खामोशी से खुद को घायल करती रहीं और तुम्हारी नींद नहीं खुली?''

सुल्तान के सवाल पर माहौल में चुप्पी छा गयी। इस घटना को आसेबी करार तो हर कोई दे रहा था मगर अभी इसे जाहिर तौर पर बयां करने को जल्दबाजी समझ रहा था। सुल्तान ने नींदगाह के दरवाजे पर लटके परदे पर लहरा रहे काले सायों पर नजर डाली, जो शाहजादी की तीमारदारी में लगी बांदियों के थे। कुछ देर बाद एक बांदी बाहर आयी।

''शाहजादी की नब्ज डूबती जा रही है। जख्म बेशुमार हैं और निहायत ही गहरे हैं।''

''क्या...क्या हम भीतर जा सकते हैं?''

बांदी ने दरवाजे से हटकर सांकेतिक सहमति दी। सुल्तान कमरे में दाखिल हुआ, शाहजादी के करीब पहुँचा। बेटी की हालत देख उसके पत्थरदिल कलेजे से भी दर्द का सोता फूट पड़ा। पट्टियों का लाल रंग ये इल्म करा रहा था कि शाहजादी के जख्म इतने गहरे थे कि अस्थाई मरहम-पट्टी के बाद भी लहू का रिसना थमा नहीं था। बांदियां जब-जब लहुलुहान शाहजादी पर नजर डाल रही थीं, तब-तब उनकी बेकरारी में इजाफा हो जा रहा था और वे मचलकर इस उम्मीद में दरवाजे की ओर देखने लगती थीं कि हकीम साहिबा आ चुकी होंगी लेकिन इसके विपरीत सुल्तान, शाहजादी को देखने के बाद बेजान बुत की मानिंद खड़ा रह गया था।

“शाहजादी के जख्म दिखाओ हमें।”

बांदियों ने कुछ देर पहले ही जख्म पर पट्टी बाँधी थी और हाकिम साहिबा की आमद का इन्तजार कर रही थीं लिहाजा सुल्तान के हुक्म को तुरंत अमल में लाने में हिचकिचायीं।

“हमने कहा, जख्म दिखाये जाए हमें।” सुल्तान ने इस बार तल्ख़ लहजे में कहा। उसकी शारीरिक भाषा जता रही थी कि वह शाहजादी के इलाज के लिए किसी नीम-हकीम के दुनियावी इल्म को अब नाकाफी समझने लगा था। शायद कुछ और भी था; कुछ ऐसा, जो राज़दराना था और सुल्तान को बुरी तरह बेचैन व दहशतजदा किये हुए था।

जब एक बांदी ने शाहजादी के हाथ पर बंधी पट्टी को खोल दिया तो सुल्तान ने जख्म से रिसते खून को पट्टी से साफ़ करके उसका दीदार किया। जिस बात का उसे खौफ था, शायद वही हुआ था; ऐसा उसकी भाव-भंगिमाओं में आयी तब्दीली ने जाहिर किया। उसने तड़पकर शाहजादी के ख़ूबसूरत मुखड़े पर नजर डाली तत्पश्चात उस बांदी से मुखातिब हुआ, जिसे शाहजादी की करीबी ताबेदार होने के साथ-साथ उसकी सहेली होने का भी दर्जा हासिल था।

“बीते दिनों में शाहजादी के साथ कोई वाकया हुआ था?” सुल्तान ने उस बांदी से पूछा।

“वाकया हुआ तो जरूर था सुल्तान....।” बांदी ने भयजदा लहजे में कहा- “पर वो इस काबिल नहीं लगता कि इस घटना का सबब बन सके।”

“वाकया क्या था?” सुल्तान का लहजा अधीर हुआ।

“दस रोज़ पहले शिकार के दौरान शहजादी सिपाहियों से बिछड़कर जंगल में अंदर चली गयी थीं।”

“हमें बताया क्यों नहीं गया?” सुल्तान दहाड़ा।

“ये...ये...कोई काबिल-ए-जिक्र वाकया नहीं लगा था हमें और न ही सिपाहियों को क्योंकि शाहजादी ज्यादा वक्त तक गुम नहीं थीं।”

सुल्तान ने बेचैन होकर पहलू बदला, कुछ देर तक विचार किया फिर बांदी से दोबारा मुखातिब हुआ- “कितने रोज पहले का वाकया है?”

“ठीक से याद तो नहीं सुल्तान मगर चार-छ: रोज पहले की बात है।”

सुल्तान इससे अधिक वहाँ रुकने का सब्र नहीं ला सका। उसने शाहजादी की नाजुक हालत की बाबत हाकिम साहिबा से दरयाफ्त करने के लिए उनके इंतज़ार में वहाँ रुकना जरूरी नहीं समझा और तूफ़ान के वेग से अस्तबल की ओर भागा। सिपाही और अन्य लोग उसके साथ चलने को उद्यत हुए लेकिन उसने उन्हें इशारे से मना कर दिया। अस्तबल में पहुँचकर उसने अपने सबसे उम्दा नस्ल के घोड़े का चुनाव किया और फिर ठिठुरन भरी उस रात की खामोशी को घोड़े की टापों की आवाज़ से चाक-चाक करते हुए जंगल की ओर रवाना हो गया।

N

वहाँ की फिजा में हवा का नाम-ओ-निशान तक नहीं था। दरख़्त बुत की मानिंद खड़े थे और किसी अजनबी खौफ के सदके जंगली जानवर भी अपनी-अपनी खोह में दुबके हुए थे। रात का अँधेरा भी यहाँ अन्य इलाकों की अपेक्षा अधिक गाढ़ा था और खामोशी इस दर्जे की थी कि उस इलाके में अभी-अभी दाखिल हुए आलमबेग को अपनी धड़कनें तक सुनाई देती मालूम पड़ती थीं। वह आगे जाने का तमन्नाई था लेकिन न जाने क्यों उसका घोड़ा सामने के दोनों पैर ऊपर उठाकर, खौफ़जदा अंदाज में जोर से हिनहिनाकर आगे बढ़ने से मना कर रहा था। सुल्तान ने कई दफे कोशिश की, घुड़सवारी के तमाम पैंतरे आजमाए लेकिन उसे कामयाबी मयस्सर नहीं हुई। घोड़ा एक बार अड़ा तो अड़ा ही रह गया। ऐसा लग रहा था जैसे कोई अदृश्य दीवार उसका रास्ता रोके खड़ी हो।

हारकर आलमबेग घोड़े से नीचे उतरा और पैदल ही आगे बढ़ने का इरादा किया लेकिन फिर उस सर्द वातावरण की रहस्यमयी खामोशी में छिपे उसके आसेबजदा होने के संकेत को भांपकर उसने घोड़े को पुचकारकर पटरी पर लाने की एक कोशिश और की मगर घोड़े को नहीं बहलना था, सो वह नहीं बहला। आखिरकार सुल्तान ने उसे एक दरख़्त से बाँधा और अपने हौसले को काम पर लगाते हुए पैदल ही आगे बढ़ा।

“महविश!” चलते-चलते उसने जोर से पुकारा। क्या उसकी जेहनी हालत बिगड़ रही थी, जो वह यहाँ इस बियावान और भयानक जंगल में उस शाहजादी को पुकार रहा था, जो इस वक्त जख्मों का जखीरा बनी महल में पड़ी हुई थी? जवाब नहीं मिला क्योंकि सुल्तान की पुकार दूर तक गूँजी जरूर मगर रही बेनतीजा ही।

ठोकरें खाता, ठण्ड से ठिठुरता और पल-पल प्रतिपल हौसले के कड़े
इम्तिहान से गुजरता सुल्तान उस रहस्यमयी इलाके में दीवानावार भटकता रहा। तब तक भटकता रहा, जब तक कि जंगल से निकलकर महताबी रोशनी से नहाये हुए एक खुले स्थान में नहीं पहुँच गया और उस नज़ारे का दीदार नहीं कर लिया, जो किसी भी हौसलामंद इंसान के पसीने छुड़ा सकता था। उस नजारे का होना ही ये साबित करने के लिए काफी था कि सुल्तान का शाहजादी को पुकारना बेसबब नहीं था।

वह एक साया था; चाँद की रोशनी में चमक रहा एक काला साया, जो यूँ लहराते हुए आगे बढ़ रहा था, जैसे उसके पाँव जमीन पर न हों। पूर्णतया निर्वस्त्र शाहजादी महविश उसका हाथ थामे हुए और किसी लाश की मानिंद बेहद बेजार हालत में उसके साथ ही चल रही थी। दोनों की पीठ सुल्तान की ओर थी और रुख उस वीरान महल की ओर था, जो अँधेरे में एक विशाल परछाईं सदृश खड़ा था।

“महविश!” बेटी की निर्वस्त्रता से शर्मिन्दा हुए बगैर सुल्तान चीखा- “रुक जाइए शाहजादी।”

मगर कोई नहीं रुका, न तो शाहजादी और न ही साया।

“व...व...वह...छलावा है शाहजादी, हकीकत नहीं है।” सुल्तान फिर चीखा मगर वह चीख भी बेनतीजा निकली।

उनकी ओर दौड़ लगाने के लिए उठे सुल्तान के पैर हवा में ही चक्कर काटकर रह गये, फासले न तय कर सके। आगे न बढ़ पाने की बेबसी ने उसे हताश कर दिया। उसने फिर कोशिश की लेकिन बस दौड़ने का उपक्रम ही कर पाया, वास्तव में नहीं दौड़ पाया।

“म..मेरी बेटी को मत ले जाओ।” सुल्तान एक बार फिर दीन-हीन होकर चीखा मगर नतीजे में कोई बदलाव नहीं हुआ। शाहजादी और महल के दरम्यान फासला सिम्त दर सिम्त सिमटता रहा।

“तुम्हें खुदा का वास्ता, रुक जाओ।” आलमबेग रो पड़ा और किसी ढहती हुई दीवार की भांति घुटनों पर गिर गया।

इस बार साया थमा, सुल्तान की ओर घूमा। अँधेरे में उसका चेहरा ढंग से नुमाया नहीं हुआ मगर फिर भी सुल्तान को ये एहसास हो गया कि उसका चेहरा भयानक था।

“उसे मत ले जाओ।” साये की ओर से प्रतिक्रिया हुई देख सुल्तान के मन में एक उम्मीद जगी। उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया मगर साये ने जो हरकत की, वह उसकी उम्मीद के खिलाफ़ थी।

वह सुल्तान के आँसू, उसकी दीनता और बेटी के प्रति उसकी मोहब्बत से
तनिक भी प्रभावित नहीं हुआ और फिर से महल की ओर घूम गया। तत्पश्चात वह उसकी दारुण चीखों को तवज्जो के काबिल न समझते हुए महल में चला गया।

ठीक उसी पल महल में हकीम साहिबा ने महविश के इंतकाल की घोषणा की।

P

1

साकेतनगर, वर्तमान भारत।

विनायक शुक्ला की शक्ल में ऐसी कोई विशेषता नहीं थी, जो लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर पाती, सिवाय इसके कि उसकी शक्ल राजकुमार राव से मिलती थी, इस हद तक मिलती थी कि अगर वह मुंबई में होता तो उसकी मूवमेंट के इंस्टेंट क्लिक्स आये दिन 'राजकुमार राव स्पॉटेड' कैप्शन के साथ सोशल मीडिया पर ट्रेंड करते। विनायक पेशे से एक कान्वेंट स्कूल में क्लर्क और स्वभाव से अंतर्मुखी व दब्बू किस्म का इंसान था, जिसका कार्यस्थल पर भी किसी से कोई ख़ास राबता नहीं हुआ करता था। फ्लैट से निकलना, नाक की सीध में चलते हुए स्कूल पहुँचना और ड्यूटी बजाकर वापस फ्लैट पर आ जाना, यही उसकी मशीनी दिनचर्या थी, जिसमें रविवार और राजपत्रित छुट्टियों के अलावा कभी कोई व्यतिक्रम नहीं आता था।

विनायक के पड़ोसी, कैबमेट, दूधवाला, अख़बारवाला इत्यादि में से कोई भी ये नहीं जानता था कि वह मखलूक इस दुनिया में उसी तरीके से आया है, जिस तरीके से सभी आते हैं या फिर आसमान से टपका है। कारण साधारण था; उसे लोगों ने जब भी देखा था, अकेले ही देखा था। वह रहता भी अकेला ही था और अपनी ओर से ऐसी कोई हरकत भी नहीं करता था कि लोगों को उसके बारे में दरयाफ्त करने का मौक़ा हाथ लगता।

वही विनायक शुक्ला, जिसकी इस दुनिया में मौजूदगी-गैरमौजूदगी से किसी की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ता था; आज बुरी तरह घबराया हुआ था। यूँ तो उसका बुरा वक्त करीब दस दिन से चल रहा था लेकिन आज वह बुरा वक्त शायद अपने पूरे जलाल पर था। वजह थी एक फोन कॉल, जिसके दूसरे छोर पर मौजूद शख्स ने उसे बताया था कि वह मरने वाला है। विनायक ने पहली दफा उसे जोर की घुड़की देकर फोन काट दिया था लेकिन उस अजनबी ने हार नहीं मानी थी और पिछले एक घंटे में आधा दर्जन बार फोन करके विनायक को ये यकीन दिलाने की नाकाम कोशिश कर चुका था कि वह सचमुच मरने वाला है लिहाजा सावधान रहने की आदत डाल ले।

कैब से उतरने के बाद विनायक ग्रोसरी की दूकान की ओर बढ़ा ही था कि मोबाइल ने एक बार फिर रिंग किया। उसने नंबर को तवज्जो दिए बगैर कॉल
अटेंड करके कर्कश स्वर में कहा- "दोबारा फोन किया तो #$&@ तेरी।"

“स....सॉरी सर, क्या कहा आपने?” दूसरी ओर से किसी महिला की सुरीली आवाज़ आयी।

विनायक हड़बड़ा गया। उसने डिस्प्ले देखा तो पाया कि ये नंबर वो नहीं था, जिससे उसके मौत की भविष्यवाणी की जा रही थी।

“मुझे कोई क्रेडिट कार्ड नहीं चाहिए।” उसने चिढ़कर कहा और फोन काट दिया। फोन दोबारा नहीं आया।

उसने ग्रोसरी खरीदी और सड़क पार करके चेतना अपार्टमेंट के गेट पर पहुँचा, जहाँ किराए का एक फ्लैट उसकी रिहाइश थी। स्कूल से लौटकर जब वह अपार्टमेंट में दाखिल होता था तो एक कुतिया नियमित रूप से पूँछ हिलाते हुए, ‘कूँ-कूँ’ की आवाज़ निकालते हुए उसके सामने लोट लगाने लगती थी और बगैर बिस्कुट खाए उसका पीछा नहीं छोड़ती थी लेकिन जब से उसकी जिंदगी में गड़बड़ी शुरू हुई थी, तब से वह कुतिया भी, जो संभवत: इस धरती पर एकलौती ऐसी शख्सियत थी, जिससे उसकी ‘जान-पहचान’ थी, उससे दूरी बनाने लगी थी।

विनायक ने पारले-जी का छोटा पैकेट हाथ में लेकर जब इधर-उधर गर्दन घुमाई तो पाया कि वह कुतिया गार्ड केबिन के पास अलाव की राख में बैठी हुई थी। उसने पुचकारकर उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, उसे बिस्कुट दिखाया। वह अपनी जगह से उठी, पूँछ हिलाकर प्यार भी जताई मगर बिस्कुट खाने को लेकर उसने कोई तत्परता नहीं दिखाई और आ कर विनायक से दो फूट की दूरी पर सीधी होकर बैठ गयी। विनायक उसे पुचकारता रहा, बिस्कुट के टुकड़े उसकी ओर फेंकता रहा मगर उसने कोई भाव नहीं दिया, केवल ‘हुश-हुश’ की आवाज़ निकालते हुए इधर-उधर गर्दन घुमाते हुए मूंछों पर जीभ फेरती रही।

“मत खा साली! जा मर जा कहीं।”

अंतत: विनायक का धैर्य जवाब दे गया। उसने बचे हुए बिस्कुट कुतिया की ओर फेंका और पैर पटकता हुआ बी ब्लॉक की बिल्डिंग की ओर बढ़ गया। कुतिया भी वापस जाकर राख में लेट गयी। बिस्कुट ज्यों के त्यों जमीन पर पड़े रहे।

विनायक के साथ पिछले दिनों से जो असहजताएं जुड़ी हुई थीं, उनमें से एक ये भी थी कि उसे अब हर इंसान घूरता हुआ नजर आता था। अगर कोई उसे सामान्य भाव से भी देखता था तो भी उसे बोध होता था कि उस इंसान की लाल आँखें उसे घूर रही हैं। ज़रा सी बात पर भी वह घबरा उठता था और हमेशा इस आशंका से भरा रहता था कि उसकी छोटी सी गलती भी लोगों को उसे जलील करने का मौक़ा मुहैया करा सकती है।

वह लिफ्ट की ओर बढ़ा ही था कि गार्ड की पुकार सुनकर ठिठका, घबराते हुए पीछे घूमा। गार्ड ने उसे गुस्से से घूरते हुए कहा- “आपके जूते का फीता खुला हुआ है।”

सुनकर विनायक ने यूँ गहरी साँस ली, मानो मरने से बाल-बाल बचा हो। उसे यूँ इत्मीनान की साँस लेते देख गार्ड के चेहरे पर नासमझी के भाव आये और वह *'अजीब आदमी है।'* बड़बड़ाते हुए वापस अपनी जगह पर चला गया जबकि विनायक ने जूते की लेस बांधी और जल्दी से लिफ्ट में समा गया।

आठवीं मंजिल पर वह जिस क्षण लिफ्ट से बाहर आया, उसी क्षण मोबाइल ने फिर रिंग किया। इस बार उसने डिस्प्ले पर फ़्लैश हो रहे नंबर को ध्यान से देखा और कुछ सोचकर कॉल अटेंड कर लिया।

"क्यों पीछे पड़ा हुआ है भाई?" उसने थके हुए और पराजित लहजे में कहा।

"सर..सर...सर....प्लीज फोन मत काटियेगा।" दूसरी ओर से गिड़गिड़ाते हुए कहा गया- "मैं आपको यकीन दिलाने की कोशिश करता हूँ कि आप सचमुच मरने वाले है।"

"तू अजीब आदमी है यार। मेरे मरने की बात ऐसे कर रहा है, जैसे ये मेरे शादी की खबर है।"

"मैं बस आपको आगाह कर रहा हूँ सर। मरना एक दिन सभी को है लेकिन जिस समय और जिस तरीके से आपकी मौत होगी, वह ठीक नहीं है। आप अपने बचाव का कोई बंदोबस्त कर लीजिए। आप बचने की कोशिश करेंगे तो शायद आप बच जाएँ।"

"मौत से कोई बच सका है क्या भाई? अगर तू कोई नजूमी है, तुझे मेरी मौत का ख्वाब वाकई चमका है तो मैं अपनी मौत से कैसे बच सकता हूँ भला?"

"आप बच सकते हैं सर क्योंकि जो मौत आप मरने वाले हैं वह नेचुरल नहीं होगी।"

इस बार विनायक दहल गया, पसीने-पसीने हो गया।

"मेरी हत्या होगी क्या? कहीं तू ही तो नहीं है इन सबके पीछे? तुझे मेरा नंबर कैसे मिला"

"मैं नहीं जानता सर।" दूसरी ओर से विवश लहजे में कहा गया- "बस इतना जानता हूँ कि आप अप्राकृतिक मौत मरेंगे। बहुत ही अजीब मौत होगी आपकी।"

विनायक के बदन में खौफ की एक सर्द लहर दौड़ गयी। उसने अधरों पर जुबान फेरी और कहा- "मैं कैसे यकीन करूँ तुम पर?"

"क्या आप पिछले कुछ दिनों से बहुत ज्यादा नर्वस महसूस कर रहे हैं? क्या कुत्ते, बिल्ली जैसे सेंसेटिव जानवर आपसे दूरी बनाने लगे हैं? क्या हर आदमी
आपको घूरता हुआ लगने लगा है?"

"प..पर...पर...तुम...तुम...ये सब कैसे जानते हो?" विनायक का टोन बदल गया। फ्लैट की ओर बढ़ते उसके कदम अनायास ही ठिठक गए।

"क्योंकि...क्योंकि सर..क्योंकि सर..।" दूसरी ओर से रुक-रूककर कहा गया- "आपसे पहले जो लोग भी मरे हैं, उनके लक्षण ऐसे ही थे।"

"तो क्या ये कोई बीमारी है?"

“मैं बस इतना जानता हूँ कि ऐसे हालात में जितने लोग मरे हैं....।” दूसरी ओर से क्षणिक खामोशी के बाद आगे कहा गया- “उन सबकी पेंटिंग मैंने बनाई है।”

“तुमने बनाई है?” विनायक की पेशानी पर बल पड़ गए- “लेकिन मैंने तो तुमसे या किसी से भी कभी कोई पेंटिंग नहीं बनवाई। अव्वल मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं हूँ।”

“पेंटिंग मुझसे कोई बनवाता नहीं है सर।” दूसरी ओर मौजूद शख्स ने सर्द आह भरकर कहा- “उन बदनसीब लोगों की पेंटिंग खुद ब खुद मेरे हाथों से कैनवास पर बन जाती है। मैं न जाने किस भावना में डूबकर वो पेंटिंग बना देता हूँ। ऐसा लगता है, मैं उस वक्त मैं न होकर कुछ और होता हूँ।”

विनायक को सूझा ही नहीं कि क्या जवाब दे। वह सेलफोन कान से लगाये हुए खड़ा रह गया।

“आप सुन रहे हैं सर?” दूसरे सिरे से पूछा गया।

“नाम क्या है तुम्हारा?”

“कामरान हुसैन।”

“कल मिलने आ सकते हो मुझसे?”

“अगर ऐसा करने से आप मुझ पर यकीन कर सकते हैं तो जरूर आ सकता हूँ सर।”

“तो फिर ठीक है। एड्रेस नोट करो।”

विनायक ने कामरान को एड्रेस नोट कराया और फिर कॉल डिसकनेक्ट करके अपने फ्लैट में दाखिल हो गया।

N

हसीनाबाद, सन 1975।

हसीनाबाद छोटा सा रेलवे स्टेशन था, जहाँ इंसानों के दर्शन तभी होते थे, जब वहाँ किसी ट्रेन का हॉल्ट होता था अन्यथा सीमित रेलवे कर्मचारियों से इतर वहाँ किसी इंसान के दर्शन दुर्लभ हुआ करते थे। दिन भर में वहाँ रुकने वाली ट्रेनों की संख्या भी बमुश्किल ही पाँच तक पहुँच पाती थी, जिनमें से किसी का भी हॉल्ट दो मिनट से ज्यादा नहीं हुआ करता था लिहाजा उस वीरान जगह का वह रेलवे स्टेशन भी ज्यादातर वीरान ही होता था।

हसीनाबाद पहाड़ों की तलहटी में बसा और जंगलों से घिरा एक छोटा सा कस्बा था, जिसे बाहरी दुनिया से जोड़ने के लिए महज़ कुछ कच्ची-पक्की सड़कें थीं और अंग्रेजों का बनवाया हुआ एक छोटा सा रेलवे स्टेशन, जिसका होना न होना लगभग बराबर था। अंग्रेजों ने क्या सोचकर उस स्टेशन को बनवाया था, ये भी आज़ाद भारत की नयी पीढ़ी के लिए बड़ा सवाल था। आबादी स्टेशन से दूर थी, जहाँ बग्घी से या फिर पैरों को अच्छी-खासी तकलीफ देकर पैदल पहुँचा जा सकता था।

रात गहरी हो चुकी थी और इसी के साथ ठण्ड में भी इजाफा हो चला था। प्लेटफार्म पर मौजूद लकड़ी के एकलौते बेंच पर बैठकर ट्रेन की राह देख रहे आदमी ने बदन से कम्बल

कसकर लपेटते हुए स्टेशन मास्टर के कमरे की ओर देखा, जहाँ अलाव की रोशनी फ़ैली हुई थी और दो लोगों के बातचीत की आवाज़ भी आ रही थी। इस सर्द आलम में अलाव की गर्माहट पाने के लिए उसका भी जी ललचाया लेकिन वह पांच मिनट पहले ही वहाँ से उठकर आया था क्योंकि दूर गूँजी हॉर्न की आवाज़ ने ट्रेन के आगमन का संकेत दे दिया था।

कुछ समय उसने ठण्ड से ठिठुरते हुए गुजारा और फिर ट्रेन के प्लेटफॉर्म पर लगते ही अपनी जगह से खड़ा हो गया। वहाँ लटक रही लालटेनों की रोशनी में वह उतरने वाले मुट्ठी भर यात्रियों के चेहरे पर निगाहें फिराने लगा। उसकी तलाश उस आदमी पर जाकर ख़त्म हुई, जिसकी उम्र तीस साल थी, बदन गठा हुआ और चेहरा हँसमुख था।

"अगर मेरी निगाहें धोखा नहीं खा रही हैं तो आप ही पशुपति अरोड़ा हैं?" आदमी उसके करीब पहुँचकर बोला।

"जी आपकी निगाहें बड़ी वफादारी से आपका साथ दे रही हैं।" पशुपति नामधारी वह आदमी मुस्कुराया और फिर आस-पास निगाहें घुमाता हुआ, उस जगह की विरानियत से प्रभावित होता हुआ बोला- "ये जगह तो मेरी अनुमान से भी ज्यादा वीरान है मिस्टर.....।" वह, अपने रिसीवर का नाम जानने के ध्येय से थमा।

"मुझे जमुना कहते हैं साहब, इस तरफ आइए।" कहने के साथ ही जमुना ने पशुपति का सामान उठाया और उसे लिए हुए स्टेशन से बाहर आ गया, जहाँ एक बग्घी खड़ी थी।

"दरअसल साहब, आज शुक्रवार है, इसलिए ये वीरानी कुछ ज्यादा ही है।" जमुना ने सामान बग्घी में चढ़ाते हुए कहा।

"ऐसा क्या होता है यहाँ शुक्रवार के दिन?"

सवाल सुनकर जमुना हड़बड़ाया। पशुपति ने भी लालटेन की रोशनी में उसके चेहरे पर वह हड़बड़ाहट देखी।

"दुनिया से कटा हुआ गाँव है साहब, ऊपर से ठण्ड का मौसम; लोग जल्द ही घरों में दुबक जाते हैं।"

"तो इसमें शुक्रवार को आप बेवजह क्यों दोष दे रहे हैं।"

"बेध्यानी में मुँह से निकल गया।" जमुना खींसे निपोरते हुए बोला लेकिन पशुपति से ये छिपा न रह सका कि सामने वाला बात का रुख पलटने की कोशिश कर रहा था। बहरहाल उसने बात को लम्बा नहीं खींचा और बग्घी में सवार हो गया।

"परदे गिरा लीजिए साहब जी, ठण्ड बहुत है।"

हिदायत देने के बाद जमुना ने घोड़ों को पथरीले रास्ते पर हांक दिया, जो हसीनाबाद की आबादी तक जाता था।

"आपने लोबान जलाया हुआ है?"

सवाल सुनकर जमुना सकपकाया। उसने गर्दन पीछे घुमाकर पूछा- “आपको इसकी सुगंध से कोई दिक्कत तो नहीं हो रही है?”

“दिक्कत तो नहीं है लेकिन क्या वजह जान सकता हूँ इसकी?”

“रात का सफ़र है, जंगल से गुजरना है इसलिए एहतियात के लिए जला लिया है।” जमुना ने घोड़ों को हांकते हुए कहा।

“आपको किससे एहतियात बरतने की जरूरत पड़ गयी?” पशुपति लापरवाह भाव से हँसा और ब्लेजर के अंदरुनी जेब से कोई पॉकेट साइज़ उपन्यास निकालकर उसके सफ़हे पलटने लगा लेकिन जब पाया कि लालटेन की रोशनी किताब पढ़ने के लिए मुफीद नहीं है तो उसने किताब बंद किया और सफ़र का वक्त काटने के लिए जमुना से ही बात करते रहने को प्राथमिकता दी। किताब के मुख्यपृष्ठ पर ‘रूपांतरण’ लिखा हुआ था।

“आप उपन्यास पढ़ते हैं?” जमुना ने एक बार फिर पीछे मुड़कर किताब पर क्षणिक दृष्टिपात करते हुए पूछा।

“खूब पढ़ता हूँ। अभी भी पढ़ने ही जा रहा था।”

“क्या चीज है ये?” जमुना इस बार बिना पीछे घूमे हुए पूछा।

“उपन्यास है। किसी अंग्रेज लेखक का लिखा हुआ है लेकिन हिंदी में अनुदित है।”

“अच्छा?” जमुना ने उत्सुकतापूर्वक कहा- “काफी दिलचस्प होगी तभी आप इतनी कम रोशनी में भी उसे पढ़ने का लालच दबा नहीं पाए।”

“नरभेड़िया और उसके शिकार की कहानी है। हिमालय की गोद में बसे एक गाँव पर केन्द्रित है।”

जमुना खामोश हो गया लेकिन पशुपति ने देखा कि वह मन ही मन कोई प्रार्थना बुदबुदाया था।

“ये तो हम जैसे इंसान ही होते हैं न?” कुछ देर की खामोशी के बाद उसने पूछा- “जो किसी शाप के कारण हर पूर्णमासी को भेड़िया में बदलते हैं? और जिन्हें चांदी की गोली या खंजर के आलावा बाकी किसी चीज से नहीं मारा जा सकता है?”

“फिक्शन लिखने वाले तो यही कहते हैं।”

जमुना फिर खामोश हो गया लेकिन अपनी उत्सुकता को ज्यादा देर तक नियंत्रित नहीं रख पाया।

“होते हैं?” उसने आंशकित लहजे में पूछा।

“क्या?”

“यही; नरभेड़िया, भेड़िया मानव, भेड़िया राक्षस, जो भी नाम है इनका।”

“आपने देखा है?”

“नहीं, लेकिन यहाँ जंगल में एक कबीला बसता है, जो उनमें बड़ी शिद्दत से यकीन करता है।”

“लोग करते होंगे, पर मैंने कभी उन्हें देखा नहीं है।”

“क्या बात करते हो साहब जी।” जमुना हो-हो करके हँसा- “जो चीज कभी दिखी नहीं, वो है ही नहीं; ऐसा कैसे माना जा सकता है।”

“तो फिर मान लीजिए कि होते हैं लेकिन अब ये मत पूछिएगा कि होते हैं तो कभी दिखते क्यों नहीं।”

“जवाब नहीं साहब आपका।” जमुना इस बार पहले से अधिक जोर से हँसा- “सीधे-सीधे काहे नहीं कह दिए कि आप इन पर यकीन करते ही नहीं हैं।”

“अगर कह देता तो ये दो मिनट इतनी आसानी से कैसे कट जाते?” पशुपति ने भी ठहाका लगाया।

“आप लोग ऐसा क्यों मानते हैं कि लोबान जलाने से जंगली जानवर आप पर हमला नहीं करेंगे?” कुछ देर बाद उसने पूछा।

“हम..हमने ऐसा कब कहा साहब जी...।” जमुना अचकचाया- “कि लोबान से जंगली जानवर दूर भागते हैं?”

“कुछ देर पहले आपने ही तो कहा कि बग्घी में लोबान एहतियात के लिए जलाये हैं। वो एहतियात जंगली जानवरों से नहीं बरत रहे हैं तो फिर किससे बरत रहे हैं?”

जमुना ने कोई जवाब नहीं दिया बस खामोशी से घोड़ों को हांकता रहा। पशुपति अपना सवाल दोबारा पूछने जा ही रहा था कि उसने मुँह खोल दिया- “इस गाँव के अपने कई राज़ हैं साहब जी, अपनी-अपनी मान्यताएं हैं यहाँ के लोगों की; बस इससे ज्यादा कुछ न पूछिए हमसे।”

“जवाब तो आपका भी नहीं है बरखुरदार। पूछने के लिए मना कर भी रहे हैं तो इस तरह कि सामने वाला पूछे बिना रह न सके।”

जमुना कुछ नहीं बोला।

“अब बताइए भी।” पशुपति ने जिद किया।

“लोग कहते हैं कि यहाँ के जंगलों में एक महल छिपा हुआ है, जो केवल जुम्मे यानी कि शुक्रवार की रात दिखाई देता है।”

सुनकर पशुपति की आँखों में शिकारियों जैसी चमक उभरी। उसने ‘रूपांतरण’ के मुख्यपृष्ठ पर बड़ी शिद्दत से हथेली फिराई।

“तो आप लोग उस महल से बचने के लिए लोबान वाला नुस्खा अपनाते हैं, लेकिन ऐसा क्या है उस महल में?”

“कहते हैं कि वह महल आसेबजदा है।” बताते हुए जमुना का लहजा कांपा- “उसमें एक काली परछाईं रहती है, जिसे जंगल में रहने कबाइली लोग अक्सर देखते हैं।”

रोमांच से पशुपति के रोंगटे खड़े हो गए। उसने बग्घी का परदा हटाकर बाहर झाँका। पूरे जंगल में धुंध काबिज थी और पेड़ खामोश खड़े थे। जंगली जानवरों की भी आवाजें वहाँ

नहीं थीं। केवल बग्घी की चरमराहट और पहियों की ध्वनि ही थी, जो वहाँ आबाद थी। पशुपति परदा गिराकर फिर से बग्घी के अंदर हुआ और जमुना से मुखातिब होकर बोला- “तो भाई साहब, आपने लोबान उस महल से बचने के लिए सुलगाया है?”

“हाँ साहब जी। लोग कहते हैं कि लोबान के धुंएँ से बुरी हवाएं पास आने से डरती हैं।”

“लोग गलत भी तो कहते हो सकते हैं? अगर वह काली परछाईं आपके सामने आ गयी तो क्या कर लेंगे आप?”

जमुना के बदन में मौत सी ठंडक सरगोशी कर गयी। उसने पीछे मुड़कर कातर भाव से पशुपति को देखा, जिसके होठों पर शरारत भरी मुस्कान थी।

“डरा रहे हो साहब जी?”

“डर तो आप खुद रहे हैं।” पशुपति हँस पड़ा- “मैं तो बस आपके एहतियात को परख रहा था।”

जमुना कसमसा कर रह गया। बोला कुछ नहीं।

“आपके कस्बे में से भी किसी ने देखा है उस साए को, जो आप लोगों के मुताबिक़ महल में रहता है?”

“कुछ हौसलामंद लोगों और जंगल में बसने वाले कबाइलियों ने देखा है उसे। बताते हैं कि वह ऐसे चलता है, जैसे उसके पाँव जमीन पर न हों। जंगल के जिस हिस्से से वह गुजरता है, वहाँ के घास और पौधे अगले दिन सूखे हुए मिलते हैं। अगर उसकी गुजर से आपको वाकिफ होना है तो शनिवार की सुबह जंगल की सैर पर निकल जाइए। जहाँ कहीं पेड़-पौधे और घासें असामान्य रूप से सूखी हुई दिखाई दें, समझ जाइए कि पिछली रात वह वहीं से गुजरा था।”

“मुझे वाकिफ़ होना है उसकी गुजर से।” पशुपति का लहजा अचानक संजीदा हो उठा।

उसके निर्णय पर जमुना के होंठों से सिसकारी छूट गयी। वह कुछ बुदबुदाया मगर प्रत्यक्ष में कोई प्रतिक्रया नहीं व्यक्त किया।

N

राजनगर, वर्तमान।

कामरान हुसैन ने कुछ क्लाइंट्स को पेंटिंग्स की स्कैन्ड कॉपी मेल की तत्पश्चात लैपटॉप फोल्ड किया, स्टडी टेबल पर बेतरतीबी से बिखरे सामानों में से वॉलेट उठाया, जेब में डाला और कमरे से बाहर आकर दरवाजे पर ताला जड़ने लगा। इस दरम्यान उसका सेलफोन बजा लेकिन उसने उसे तब तक तवज्जो नहीं दी, जब तक कि दरवाजे को लॉक नहीं कर लिया।

उक्त कार्य से फारिग होने के बाद वह कई मोड़ पार करके गली से निकलकर सड़क पर आ गया और एक ढाबे की ओर कदम बढ़ाते हुए सेलफोन बाहर निकाला, मिस कॉल के तहत दर्ज उस नंबर पर कॉल किया, जो कि पहली रिंग में ही अटेंड कर ली गयी।

“सॉरी सर।” उसने व्यावसायिक शालीनता भरे लहजे में कहा- “दरवाजा लॉक कर रहा था, इसलिए फोन नहीं उठा पाया। आज काम के चक्कर में लेट हो गया। माँ खाने के लिए इंतज़ार कर रही होगी।”

दूसरी ओर से कुछ कहा गया।

“आप यकीन करें सर। मैंने नया ग्राफ़िक टैबलेट ऑर्डर कर दिया है, जो कल हर हाल में डेलिवर हो जाएगा। मैं सबसे पहले आप के ही काम निपटाऊंगा। अगर जीटी खराब नहीं हुआ होता तो अब तक निपटा भी दिया होता।”

दूसरी तरफ से जो कुछ कहा गया, उसे सुनने के बाद उसने कृतज्ञ लहजे में ‘थैंक यू सो मच सर।’ कहा और कॉल डिसकनेक्ट करके मोबाइल को जेब के हवाले कर दिया।

रात के नौ बज रहे थे। कुहरा छोटी-छोटी बूंदों के रूप में बरस रहा था और इसी के साथ वातावरण में सफेदी भी बढ़ती जा रही थी। दोनों हाथ ओवरकोट की जेब में डाले हुए कामरान ढाबे के काउंटर पर पहुँचकर थम गया। उसने मुँह से कुछ नहीं कहा बावजूद इसके ढाबे पर काम करने वाले ‘छोटू’ ने चार मंजिलों वाला स्टील का एक टिफिन और साथ में थर्माकोल की दो थाली लाकर उसके सामने काउंटर पर रख दिया। टिफिन उठाने से पहले कामरान ने वॉलेट से कुछ नोट निकाले और उनमें से दस का एक नोट बतौर टिप ‘छोटू’ को पकड़ाने के बाद बाकी पैसों के साथ कैश काउंटर पर पहुँचा, भुगतान किया फिर टिफिन लिए हुए उस एकलौते ऑटो की ओर बढ़ गया, जो वहाँ शायद उसी के इंतजार में खड़ा था। सीट पर आसीन होने के बाद उसके ‘चलो’ कहने भर की देर थी कि ऑटो ठण्ड के कारण समय से पहले ही सुनसान हो चली सड़क पर दौड़ पड़ा।

पैंतीस साल का कामरान हुसैन पहले बॉलीवुड के प्रोडक्शन हाउस में प्रोडक्शन डिज़ाइनर हुआ करता था लेकिन अब एक स्वतंत्र चित्रकार की हैसियत रखता था, जो आधुनिक गैजेट्स के सहारे आर्ट बनाने में भी उतना ही सिद्धहस्त था, जितना हाथ से पेंटिंग बनाने में। विभिन्न पत्रिकाओं और कॉमिक्स जगत में इलस्ट्रेशन के काम से लेकर वह डिमांड पर लोगों की पेंटिंग बनाने का भी काम करता था। अब तक अपनी कई पेंटिंग्स वह नामी-गिरामी एजेंसियों को ऊँचे दामों में बेच चुका था। अपने इस हुनर के सदके वह इतनी पर्याप्त आय तो बना ही लेता था कि बैंक की धमकी भरी नोटिस झेले बगैर समय पर ईएमआई भर देता था, अपने और माँ के लिए दो वक्त की रोटी जुटा लेता था और आपातकाल के लिए कुछ रुपये भी जोड़ लेता था।

जब ऑटो कामरान के कहे बगैर उसके इच्छित जगह पर पहुँचकर रुक गया तो वह नीचे उतरा। सामने कब्रिस्तान का गेट था, जहाँ एक मरियल से बल्ब की पीली रोशनी फ़ैली हुई थी। उस रोशनी में कब्रिस्तान में छाये कुहरे के कतरे इधर-उधर उड़ते नजर आ रहे थे।

ऑटो वाले को भुगतान करने के बाद कामरान बड़े ही सहज भाव से गेट की ओर बढ़ गया जबकि ऑटो वाला आगे निकल गया।

कब्रिस्तान का गेट खुला था। वहाँ से थोड़ी दूर पर मौजूद टीन शेड की झोपड़ी में रोशनी फ़ैली हुई थी। कब्रिस्तान का चौकीदार भी शायद कामरान की आमद से वाकिफ था, इसलिए उसने गेट बंद नहीं किया था।

"पानी लेते आना गुलफाम मियाँ।" उसने झोपड़ी की ओर रुख करके आवाज़ लगाई और फिर सेलफोन का फ़्लैशलाइट ऑन करके गेट खोलकर कब्रिस्तान में दाखिल हो गया। बाहर की अपेक्षा यहाँ अधिक ठण्ड होने के कारण उसके दांत बज उठे। चारों तरफ उबड़-खाबड़ कब्रें बिखरी हुई थीं, जिनमें से कुछ पक्की भी थीं। फ़्लैशलाइट की रोशनी में उन कब्रों के बीच से रास्ता बनाते हुए वह उस पक्की कब्र के सामने पहुँचकर थम गया, जिस पर उर्दू में 'फरज़ाना बेगम' खुदा हुआ था और जीवनकाल की अवधि के तौर पर '7 फरवरी 1950-13 मार्च 2019' दर्ज था।

"कैसी हो अम्मीजान?" कामरान ने कब्र को लक्ष्य करके कहा और सेलफोन को एक पत्थर से टिका दिया ताकि वहाँ रोशनी बरकारर रहे तत्पश्चात उसने जमीन का एक टुकड़ा रुमाल से साफ़ करके वहाँ बैठते हुए कहा- "आज काम के चक्कर में बहुत लेट हो गया। चलो फटाफट खा लेते हैं।"

उसने थर्माकोल की एक थाली अपने आगे रखी और दूसरी कब्र पर। टिफिन में मौजूद भोजन के थालियों में परोसे जाने तक कब्रिस्तान का चौकीदार एक बोतल पानी और प्लास्टिक के दो गिलास वहाँ रखकर चला गया। उसने इस बात पर ज़रा भी आश्चर्य नहीं व्यक्त किया कि कामरान अपनी मरहूम माँ के आगे भोजन की थाली सजा रहा था और उससे बातें कर रहा था।

"दस दिन की मेहनत के बाद आखिरकार मैंने उसका पता लगा लिया अम्मी।" कामरान ने बोतल का पानी गिलास में उड़ेलते हुए कहा- "उसका नाम विनायक शुक्ला है।" दोनों गिलास भरने के बाद उसने भोजन का पहला निवाला हलक के सुपुर्द किया और जुगाली करते हुए कहा- "पहले तो उसे मेरी बात पर यकीन नहीं हुआ, गाली गलौज भी की उसने मेरे साथ लेकिन फिर किसी तरह मेरा ऐतबार किया और कल मिलने के लिए बुलाया।"

मरहूम फरज़ाना बेगम की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। इस दरम्यान उस कब्रिस्तान की फिजा में काबिल-ए-गौर बात ये हुई थी कि सब कुछ शांत पड़ चुका था; बेहद खामोश। मानो प्रकृति भी माँ के प्रति कामरान के उस रहस्यमयी प्रेम को महसूस कर रही थी। हवा की हल्की-फुल्की सरगोशी से कब्र पर रखा पानी का गिलास काँप रहा था।

"ये पहली दफा होगा अम्मी कि शायद मैं किसी ऐसे बदनसीब को मरने से बचा लूँ, जिसकी शक्ल मेरे कैनवास पर नुमाया हुई है।" कामरान ने दूसरा निवाला लिया मगर उसे मुँह में रखने के बजाय उसे घूरते हुए खोये-खोये लहजे में बोला- "मैं नहीं जानता कि मैं

अल्लाह के किस जलाल की नुमाईश हूँ लेकिन ये जो कुछ भी है, मेरे लिए बद्दुआ है, एक शाप है। मुझे बुरा लगता है, जब मेरी कूची, जो मेरे दो वक्त की रोटी कमाने का जरिया है, कभी-कभी कैनवास पर किसी निर्दोष की मौत का फरमान लिख देती है। बहुत बुरा लगता है मुझे।"

कामरान ने निवाला मुँह में रखा। इस बार उसकी आँखों में आँसू थे और चेहरे पर भी संताप की छाया नजर आ रही थी। उसने निवाला ख़त्म करने के बाद कब्र से मुखातिब होकर सवाल किया- "वो बच तो जाएगा न अम्मी?"

जाहिर था, कब्र से कोई आवाज़ नहीं आनी थी, नहीं आयी लेकिन हवा का एक सर्द और मद्धिम झोंका वहाँ से जरूर गुजर गया। कामरान के लिए मानो वह झोंका ही उसके सवाल का जवाब लेकर आया था।

"नहीं-नहीं।" वह बेचैन लहजे में बड़बड़ाया और खाना छोड़कर कब्र के और नजदीक आ गया- "ऐसा मत कहो अम्मी। दस दिन की मेहनत से उसे ढूँढा है मैंने। उसे बचना चाहिए। वह जरूर बचने का कोई उपाय कर रहा होगा।"

प्रत्युत्तर में हवा एक बार फिर सरगोशी कर गयी।

"क्या कहा?" कामरान के लहजे में हैरत का दखल हो गया। उसने अपनी सवालिया निगाहें माँ की कब्र पर जमाये हुए कहा- "वह...वह...आज रात..वह आज रात ही मर जाएगा?"

इस बार हवा ने कोई सरगोशी नहीं की लेकिन कामरान भांप गया कि उसके सवाल पर माँ ने मौन 'हाँ' कहा है।

"या अल्लाह!" उसने अपना सिर थाम लिया और निढाल होकर कब्र की टेक ले ली- "किस मनहूस घड़ी में तूने मुझे एक मुसव्विर के रूप में पैदा किया। ऐसी लानत तूने मुझे ही क्यों बख्शी? मैं क्यों लोगों की मौत का जरिया बन रहा हूँ?"

सहसा कामरान को कुछ ख्याल आया। उसने मोबाइल उठाया और आनन-फानन में विनायक का नंबर डायल किया। रिंग पूरी गयी लेकिन फोन नहीं उठाया गया। उसने दोबारा कोशिश की, कई दफे कोशिश की लेकिन नतीजा सिफ़र रहा। और फिर कामरान के मस्तिष्क में केवल यही एक विचार आया; विनायक या तो सो चुका था या हमेशा के लिए सो चुका था।

N

रात के दस बजने जा रहे थे। ठण्ड के कारण बिल्डिंग में खामोशी छा गयी थी। सड़कें भी सुनसान हो गयी थीं। बाहर कुहरा यूँ बरस रहा था, जैसे फुहारों के रूप में बारिश गिर रही हो। हर रोज की तरह आज भी विनायक सब्जियाँ काट रहा था। अपने अकेले के लिए खाना बनाने में उसे आलस का एहसास होता था, यही वजह थी कि उसके चूल्हा जलाने का समय तय नहीं होता था। और न ही ये तय होता था कि वह खाना बनाएगा ही; लेकिन

आज बना रहा था। करीब तीन घंटे तक ब्लैक एंड वाइट एरा की कोई पुरानी फिल्म देखने के बाद जब कामरान द्वारा फोन पर दी गयी हिदायत को लेकर उसका तनाव कुछ कम हुआ था तो उसे तेज भूख के एहसास ने आ घेरा था लिहाजा इस वक्त वह किचन में सब्जियाँ काट रहा था। बगल में पड़ी मोबाइल पर लता मंगेशकर का गाया हुआ और बबिता व राजेश खन्ना पर फिल्माया हुआ गीत 'अकेले हैं, चले आओ।' चल रहा था।

कामरान ने जब विनायक से उसका पता लेकर कल आने का वायदा करके अपने सच्चे होने का लक्षण प्रकट कर दिया था तो विनायक न चाहते हुए भी उसकी कही हुई बातों को लेकर गंभीर हो उठा था। उसी गंभीरता के सदके फ्लैट पर आते ही उसने हफ्ते भर पहले कराई हुई अपनी सारी रूटीन चेकअप की रिपोर्ट्स पढ़ डाली थी। पहले से ही नॉर्मल रहे उन रिपोर्ट्स को दोबारा परखने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा कि यदि उसे हार्ट अटैक, ब्रेन हेमरेज या अन्य प्रकार का कोई आघात न आये तो कम से कम उसकी मौत स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से नहीं होने वाली थी। अब मौत का संभावित कारण दुर्घटना बचता था। क्या छत गिर जायेगी? क्या सांप डस लेगा? क्या बिजली का झटका लग जाएगा? क्या एक्सीडेंट हो जाएगा? इसी तरह के तमाम सवाल गढ़कर वह उक्त परिस्थितियों से बचाव की रूपरेखा तैयार कर रहा था। फ्लैट की सारी खिड़कियाँ बंद कर दी थीं उसने। बार-बार ये चेक कर रहा था कि घर में किसी विषैले जीव के आगमन का जरिया तो नहीं खुला हुआ है। चाय बनाने के लिए दूध निकालते वक्त उसे दो बार परखा था कि कहीं उसमें छिपकली तो नहीं गिरी पड़ी है। उक्त सावधानियां बरतते वक्त उसके मगज में ये ख्याल ज़रा भी नहीं आया कि शीत ऋतु सांप और छिपकलियों के सोने की ऋतु होती है। इंसान अपने बचाव की तमाम तरकीबें निकालता है, हर सावधानियाँ बरतता है लेकिन मौत फिर भी आकर रहती है; उसकी भी आकर रही।

सहसा फ्लैट की सारी लाइटें ऑफ हो गयीं नतीजतन समूचा फ्लैट कोलतार से गाढ़े अंधकार में डूब गया।

'अब ये क्या नया तमाशा शुरू हुआ इन लोगों का?' बड़बड़ाते हुए विनायक ने मोबाइल की टॉर्च जलाई लेकिन सब्जियों पर दोबारा ध्यान लगा पाता, इससे पहले ही कुछ महसूस करके उसका ध्यान उचट गया। उसके कान खड़े हो गये। मोबाइल लेकर वह पीछे घूमा। फ्लैट का जो-जो हिस्सा प्रकाश के रास्ते में आया, रोशन हो गया, बाकी ज्यों का त्यों अँधेरे में डूबा रहा।

'कुछ तो था; मगर क्या?'

जवाब नदारद था। क्षण भर पहले हुए उस एहसास को वह कोई नाम नहीं दे सका, जो उसके लिए बिल्कुल नया था। उसने मात्र यही अनुभूत किया था कि कहीं कुछ हुआ है; मगर क्या? टॉर्च की रोशनी की जद में आये हिस्से तो ज्यों के त्यों थे। उसने किचन से बाहर आकर फ्लैट के बाकी हिस्सों में भी रोशनी घुमाई

मगर नतीजा पहली बार से जुदा नहीं रहा।

पोर्टेबल लैंप जलाकर ड्राइंग रूम में रखने के बाद वह दोबारा किचन की ओर घूमा लेकिन फिर अपना इरादा मुल्तवी कर दिया, कारण कि फ्लैट में किसी अज्ञात और अजीबोगरीब औरा के मौजूद होने के एहसास को वह नजरअंदाज नहीं कर पा रहा था। बेचैन होकर वह बाल्कनी में आ गया। नीचे अपार्टमेंट के कंपाउंड में कुहरा और सन्नाटा पसरा हुआ था। आवारा कुत्ते तक नहीं नजर आ रहे थे। हैरानी की बात ये थी कि कंपाउंड के बल्ब जल रहे थे।

'मुझसे किस जन्म का बदला ले रहे हैं ये साले?'

बड़बड़ाते हुए विनायक ने आस-पास के फ्लैट की खिड़कियों पर नजर डाली। सोने का वक्त होने के कारण ज्यादातर फ्लैटों की लाइटें ऑफ हो चुकी थीं लेकिन कुछ की खिड़की से छनकर बाहर आती रोशनी ये साबित करने के लिए पर्याप्त थी कि बत्ती केवल विनायक की गुल हुई थी। बुरी तरह भड़का हुआ वह कोई नम्बर पञ्च करने ही जा रहा था कि कंपाउंड में कुछ देखकर हिल गया।

'य..ये तो...ये वही है।'

वह एक काला साया था, जो अभी-अभी अपार्टमेंट के गेट से भीतर दाखिल हुआ था। अचरज की बात ये थी कि ये दखल उसने वाचमैन-केबिन से सामने से ही बनाई थी लेकिन वाचमैनों की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई थी। विनायक इस पर जरूर हैरान होता अगर वह साए की चाल देखकर ये नहीं भांप गया होता कि वह कोई आम मखलूक नहीं था। उसके चलने का ढंग ऐसा था, जैसे हवा में तैर रहा हो। विनायक को लगा उसे भ्रम हुआ है। उसने आँखें मींची और इस बार नजारे का ध्यान से मुआयना किया लेकिन नजर वही आया, जो प्रथम दृष्टया आया था।

वह बौखलाकर भीतर आया और बाल्कनी में खुलने वाले कांच के स्लाइडिंग डोर को बंद कर दिया। उसके सारे अंग पसीना उगल रहे थे, साँसें तेज हो रही थीं और इसी के साथ वह स्ट्रेंज वाइब भी लगातार बढ़ता जा रहा था, जो उसे पहले से ही बेचैन किये हुए था। वह पागलों की तरह भाग-भागकर ये चेक करने लगा कि सभी खिड़की-दरवाजे ठीक से बंद हैं या नहीं और जब आश्वस्त हो गया तो सब्जी काटने वाला चाकू हाथ में लेकर, हमले की मुद्रा अख्तियार किये हुए सोफे पर बैठ गया, मानो वह रहस्यमय साया जो कुछ भी था, उसी के लिए आ रहा था।

वह कान खड़ा किये हुए छोटी से छोटी आवाज़ का जायजा लेता रहा लेकिन कानों को कोई आवाज़ नहीं सुनाई दी। देती भी कैसे; खुद उसके साँसों की आवाज़ फ्लैट के सन्नाटे में शोर बनी हुई थी। सहसा मोबाइल बजा। डिस्प्ले पर कामरान नाम फ़्लैश हो रहा था। आख़िरी बार बात करने के बाद उसने उसका नंबर सेव कर लिया था। वह ग्रीन आइकॉन को स्वाइप करने ही वाला था कि वहाँ एक सर्द आवाज़ गूँजी- "फोन मत उठाना।"

मोबाइल विनायक के हाथ से छूटकर फर्श पर जा गिरा। *‘वह अंदर ही है।’* इस एकमात्र ख्याल ने उसके जिस्म से सारी ताकत निचोड़ ली। आवाज़ उसके पीछे से आयी थी मगर वह पीछे घूमने का हौसला न कर सका। फोन बजता रहा लेकिन उसने कॉल रिसीव नहीं की। जब रिंग ख़त्म हो गयी तो पीछे से वही आवाज़ दोबारा आयी- “वह नहीं चाहता कि तुम जीते-जी उसका दीदार करो, जिसका दीदार लोग मरने के बाद करते हैं।” आवाज़ बेहद पतली थी मगर जनाना नहीं थी। आभास होता था कि कोई दूर से बात कर रहा है।

विनायक का बदन बुरी तरह थरथरा उठा। उसने पुतली को आँख के कोरों तक घुमाकर पोर्टेबल लैंप की रोशनी में उसकी परछाईं देखने की कोशिश की मगर नहीं देख पाया। शायद वह ऐसे एंगल पर नहीं था कि परछाईं बन सके या फिर शायद उसकी परछाईं बन ही नहीं रही थी।

“डरो मत। मेरी ओर घुमो।” आवाज़ के मालिक ने अपने लहजे में दुनिया भर की मिठास घोलते हुए कहा।

फोन फिर बजा। डिस्प्ले पर फिर से कामरान नाम फ़्लैश हुआ।

“ध्यान मत दो उस पर।” इस बार आवाज़ में हल्की सी सख्ती थी।

विनायक की हिम्मत दोबारा डिस्प्ले पर नजर डालने की नहीं हुई। थोड़ी देर में रिंग एक बार फिर खुद ब खुद शांत हो गयी।

“मेरी ओर घुमो।” आवाज़ ने पुराना आदेश दोहराया।

विनायक शुष्क गला तर करते हुए पीछे घुमा। किचन के दरवाजे के ठीक बीच में वह था। यूँ था जैसे कोई परछाईं लहरा रही हो। उसके लिए ये तय करना मुश्किल हो गया कि सामने खड़ी वह चीज भौतिक है या महज़ एक परछाईं है। पसीने से तर-ब-तर चेहरा लिए हुए वह उसकी ओर देखता रहा। भय के कारण चाहकर भी कुछ नहीं बोल पाया; अव्वल उसके पास बोलने के लिए कुछ था ही नहीं।

‘तो इस मौत की बात कर रहा था कामरान?’

इधर विनायक के जेहन में उक्त ख्याल ने सरगोशी की, उधर परछाईं ने पूर्ववत् मीठी जबान में मुँह खोला- “डरो मत।”

“क...कौन.....कौन.....।” विनायक के कंठ से बस यही दो शब्द सरसराए। इससे आगे ‘हो तुम’ जोड़कर वह अपना वाक्य तक पूरा नहीं कर पाया।

“एक परछाईं, जो लोगों को दूसरी दुनिया में ले जाती है। उन्हें जीते जी मौत के बाद की दुनिया दिखाती है।”

“म...मुझे...मुझे नहीं...मुझे....मुझे नहीं जाना है।”

“लेकिन तुम्हें तो चुन लिया गया है। जाना तो होगा।” परछाईं लहराकर दो कदम आगे बढ़ी।

“मेरे..मेरे करीब मत आना।” विनायक ने चाकू का रुख उसकी ओर करते हुए कहा, ये बात जुदा थी कि उसका चाकू वाला हाथ जिस तरह काँप रहा था, उसे देखकर लगता था कि चाकू किसी भी पल जमीन पर गिर सकता था।

“मुझ पर ये चाकू असर नहीं करेगा। कोशिश करके देख लो।” परछाईं ठहर गयी।

विनायक क्या कोशिश करता। उस पर तो खौफ इस कदर तारी था कि उसके लिए चाकू तक संभालना मुश्किल हो रहा था लेकिन फिर उसके जेहन में कुछ कौंधा और उसने परछाईं को कोई हरकत करने का मौका दिए बगैर लपककर पोर्टेबल लैंप उठा लिया। उसके लैंप ऑफ करने भर की देरी थी कि पूरा फ्लैट एक बार फिर अँधेरे में डूब गया। इन खौफ़नाक पलों में भी वह इस साधारण से नियम को नहीं भूला था कि परछाईं के अस्तित्व के लिए प्रकाश का अस्तित्व जरूरी है।

फ्लैट में काबिज हुए अँधेरे में घुलकर वह परछाईं भी अब गायब हो चुकी थी। विनायक ने सीने पर हाथ रखा, जो अब भी जोरों से उछल रहा था तत्पश्चात सोफे पर फ़ैलकर साँसों को संयत कर ही रहा था कि सेलफोन फिर बजा, डिस्प्ले पर कामरान नाम फिर से फ़्लैश हुआ। वह हाथ बढ़ाकर मोबाइल उठाने को उद्यत हुआ।

“कहा न कि उस पर ध्यान मत दो।” अँधेरे के गर्भ से परछाईं की आवाज निकली। इस बार आवाज़ विनायक के सामने से आयी थी और बेहद नजदीक से आयी थी, इतने नजदीक से कि उसने किसी की गर्म साँसों को अपने चेहरे पर महसूस किया।

खतरा बढ़ गया था। अँधेरे ने उस रहस्यमयी मखलूक को उदरस्थ किया तो था मगर फना करने की नियत से नहीं, पनाह देने की नियत से। वह थी अब भी, बस विनायक की नज़रों से ओझल थी। विनायक ने फिर से लैंप जला लिया। परछाईं उसके सामने वाले सोफे पर बैठी हुई थी; बिल्कुल शांत, मानो दूसरी दुनिया में ले जाने से पहले चयनित इंसान को हर दांव-पेंच आजमाने का मौक़ा देना उसके नियम में शामिल हो।

जब कई क्षण खामोशी में गुजर गए तो विनायक ने एक बार फिर किस्मत आजमाई। वह सोफा, सेण्टर टेबल इत्यादि को लांघता हुआ पूरे वेग से दरवाजे की ओर दौड़ पड़ा। दरवाजे तक सकुशल पहुँचा, चिटकनी भी गिरा ली मगर उसे खोलकर फ्लैट से बाहर नहीं जा सका। जा पाता, इससे पहले ही उसके अंग-प्रत्यंग जड़ हो गए। दोनों हाथ ऐंठकर पीठ पीछे जा लगे और बदन अकड़ने लगा।

“ये नियमों की फेहरिस्त में नहीं है। तुम भाग नहीं सकते क्योंकि तुम्हें चुना गया है।” परछाईं के लहजे की मिठास गायब हो गयी। जाहिर था, चयनित इंसान के अंजाम की घड़ी आ चुकी थी।

अगले पल विनायक की शारीरिक अवस्था तो सामान्य हो गयी लेकिन मानसिक दशा बदल गयी। अब उसके चेहरे पर खौफ़ नहीं था और न ही कोई अन्य भाव। उसने ट्रांस जैसी

अवस्था में चलकर सोफ़े पर पड़ा चाकू उठाया और अपने कपड़े काटने लगा। कुछ ही देर बाद वह दिगंबर अवस्था में परछाईं के सामने खड़ा था।

इसके बाद परछाईं ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और विनायक ने उसे थाम लिया।

P

2

लियाकत अली ने अलार्म को फुल वॉल्यूम पर सेट करके मोबाइल को उस शख्स के कान के पास रख दिया, जो रजाई में मुँह छुपाये हुए इत्मीनान की नींद सो रहा था। अपनी उक्त हरकत का अंजाम देखने के लिए वे कमर पर हाथ रखे हुए वहीं खड़े रहे। करीब एक मिनट गुजरा और अलार्म ने जो चीखना शुरू किया तो रजाई में घुसे उस शख्स को उठाकर ही दम लिया।

“हद करते हो यार अब्बू!” नींद से बाहर आये शख्स ने रजाई से सिर निकालकर बुरा सा मुँह बनाया और अलार्म बंद करके फिर से रजाई घुसने का उपक्रम करने लगा लेकिन लियाकत ने इस बार पूरी रजाई ही उसके बदन से खींच ली।

“सुबह के नौ बज रहे हैं थानेदार साहब!” उन्होंने सेलफोन का डिस्प्ले बेटे की उनींदी आँखों आगे रखते हुए कहा।

“खुदा के लिए रहम कीजिए इस गरीब पर।” थानेदार साहब ने बेड पर चित्त लेटे हुए कहा- “रात भर पेट्रोलिंग करके आया हूँ। सुबह पाँच बजे तो बिस्तर की शक्ल देखी है।”

“हाँ तो चार घंटे हो गए न?” लियाकत ने लिहाफ़ समेटते हुए कहा- “बाकी के चार घंटे थाने में सो लेना।”

“कमाल है।” थानेदार साहब ने हैरानी से दीदे फाड़ी- “आपको एक एस.एच.ओ. की नौकरी में और किसी सरकारी दफ्तर के क्लर्क की नौकरी में कोई फर्क नहीं नजर आता?”

“हाँ, मालूम है कितने मेहनतकश हैं आप फाह्याज़ मियां। इलाके का क्राइम ग्राफ फ़र्ज़ के प्रति आपकी वफादारी का नंगा सबूत देता है।”

“आपसे बहस करने से अच्छा है मैं बिस्तर से ही उठ जाऊं। जब मुँह खुलता है आपका, ताने ही निकलते हैं।” फाह्याज़ ने चिढ़कर कहा और बिस्तर से उतरकर सीधा अटैच्ड बाथरूम की ओर बढ़ गया।

“फ्रेश होकर सीधे नाश्ते की टेबल पर आना।”

जवाब में फाह्याज़ ने कुछ कहने के बजाय बाथरूम का दरवाजा जोर से बंद करके आधी नींद से उठ जाने की एवज में आये गुस्से का इजहार किया। लियाकत बेटे की चिढ़ पर मुस्कुराकर कमरे से बाहर निकल गए।

करीब चालीस मिनट बाद यूनिफार्म में सजा-धजा फाह्याज़ जब डाइनिंग टेबल पर पहुँचा तो वहाँ लियाकत पहले से मौजूद थे।

"पुलिस स्टेशन के लिए निकल रहे हो?" उन्होंने भवें उंचकाई।

"हम्म!" एक कुर्सी पर तशरीफ़ टिकाते हुए और ब्रेड व बटर की प्लेटें अपनी ओर खींचते हुए उसने कहा- "इलाके के क्राइम ग्राफ की लम्बाई को छोटा करना है और आपको फ़र्ज़ के प्रति अपनी वफ़ादारी का सबूत भी तो देना है, वरना बाहर कुछ लोग हमें गद्दार तो कहते ही हैं, जल्द ही आप भी कहने लगेंगे।"

"दैट्स लाइक अ गुड बॉय।"

फाह्याज़ खामोश होकर ब्रेड की स्लाइस पर बटर लगाने लगा।

"हसन स्कूल गया?" थोड़ी देर बाद उसने पूछा।

"हाँ, बाप की तरह नौ बजे तक सोने वाला लड़का नहीं है। पाँच बजे ही उठ जाता है और मेरे साथ नमाज के लिए भी जाता है।"

फाह्याज़ ने आलू का पराठा उठाया और हर बाइट के साथ चाय की चुस्कियाँ लेने के इरादे से उसका रोल बनाने लगा।

"परफैक्टमैचडॉटकॉम पर मैंने कुछ लड़कियाँ देखी हैं।" लियाकत ने सेलफोन के डिस्प्ले पर उंगलियाँ फिराते हुए कहा।

"इस उम्र में शादी करेंगे आप?" फाह्याज़ ने चेहरे पर बनावटी हैरानी जाहिर की। चाय का कप उठाने के लिए आगे बढ़ा उसका हाथ भी रुक गया।

"मैंने तुम्हारे लिए देखी है इडियट।"

"लेकिन मैंने तो कह रखा है कि शादी को लेकर हमारे बीच कोई बात नहीं होगी।" फाह्याज़ ने पराठे का रोल प्लेट में रख दिया और बहस की मुद्रा अख्तियार किये हुए पिता पर नजर डाली- "बाकायदा डील हुई थी हमारे बीच।"

"जिद छोड़ दो फाह्याज़।" लियाकत ने जूस का गिलास खाली करके मेज पर रखा और संजीदा लहजे में कहा- "जिंदगी बहुत लम्बी है। अकेले काटनी मुश्किल है।"

"लेकिन आपने तो काट ली, बगैर दूसरी शादी किये।"

"वो सिचुएशन अलग थी। जब तुम्हारी अम्मी का इंतकाल हुआ, तुम बड़े हो गए थे, तुम्हारी दोनों बहनों की शादी भी हो चुकी थी।"

फाह्याज़ ने कुछ नहीं कहा और होंठ चबाते हुए पहलू बदलने लगा। जब उसके हाव-भाव से लियाकत को लगा कि वह टेबल से उठकर जाने ही वाला है तो वे उसके बगल वाली कुर्सी पर आकर बैठ गए और कंधे पर हाथ रखते हुए बोले- "हसन अभी केवल सात साल का है। शबनम के जाने के एक साल बाद भी वह लड़का नींद में अपनी माँ को ढूँढता है। तुम ट्वेंटी फोर सेवन की अपनी नौकरी की मशरूफियत में अपना गम तो गलत कर लेते हो लेकिन तुम्हारा बेटा अंदर ही अंदर घुटता रहता है। तुम खुद भी उसे वक्त नहीं दे

पाते हो। कभी उसकी खामोशी को महसूस की है तुमने? तुम्हें याद भी है, तुम कितने महीने पहले उसे अम्यूजमेंट पार्क लेकर गए थे?"

"तो आपके सिर पर ये फितूर सवार हो गया है कि आप ऑनलाइन शॉपिंग के जरिये जिस पताका गुड्डी को बहु के रूप में लाएंगे, वह मेरी जिंदगी में, इन फैक्ट हसन की जिन्दगी में शबनम की कमी पूरी कर देगी?"

"ऑफ़कोर्स कर देगी।"

"इट्स एनफ अब्बू।" फाह्याज़ ने उकताकर कहा- "शादी जुए का खेल है। इस खेल में एक बार किस्मत ने मेरा साथ दिया था और मुझे शबनम जैसी बीवी मिली थी लेकिन हर बार किस्मत साथ देगी, जरूरी तो नहीं? मैं हसन को किसी सौतेली माँ के पल्ले नहीं बाँधने वाला हूँ। वह अभी जैसा है, वैसा ही ठीक है।"

"वह तुम्हें ठीक लगता है लेकिन ठीक है नहीं। कभी बैठो उसके पास तो तुम्हें पता लगेगा कि वह किस कदर आम लड़कों से अलग होता जा रहा है।"

"हाँ तो आप हैं न उसके साथ। क्यों नहीं बनाते उसे आम लड़कों के जैसा?"

"और जब मैं नहीं होऊंगा तब?"

"तब मैं उसे बोर्डिंग स्कूल में छोड़ दूंगा।"

"जब तुम एक छोटे बच्चे के लिए माँ की अहमियत समझते ही नहीं तो आगे तुमसे बात करना ही बेकार है।"

"जानते हैं तो फिर आज शादी नाम का ये शगूफा छेड़कर क्यों बैठ गये?"

इससे पहले कि लियाकत कोई प्रतिक्रिया व्यक्त करते, फाह्याज़ का फोन रिंग करने लगा। उसने कॉल अटेंड की और संक्षिप्त बातचीत के बाद गहरी साँस लेकर डिसकनेक्ट दी।

"मुँह क्यों लटक गया?" लियाकत ने पूछा।

"सब इंस्पेक्टर का फोन था। चेतना अपार्टमेंट के बी ब्लॉक की बिल्डिंग के एक फ्लैट में किसी के मरने की खबर है।" फाह्याज़ ने पराठे का रोल जल्दी-जल्दी मुँह में ठूँसते हुए कहा।

N

हसीनाबाद, सन 1975।

पशुपति ने ओस से गीली उन घासों और जंगली पौधों पर नजर डाली, जो यूँ सूखे हुए थे जैसे लम्बे अरसे से कड़ी धूप में रहे हों जबकि इसके विपरीत आस-पास की घासें और पौधे सामान्यत: हरे-भरे थे। सुबह के आठ बज चुके थे लेकिन पिछली रात से ही वातावरण में काबिज कुहरे की सफ़ेद चादर अभी तक नहीं हटी थी। स्टेशन से आते वक्त बग्घी में जमुना की कही हुई बातें पशुपति के जेहन में ताजा थीं इसलिए उसने सूखी हुई घासों का अनुसरण करते हुए जब निगाहों का रुख सामने किया तो पाया कि घासों का वह

सिलसिला जंगल के भीतर काफी दूर तक चला गया था और इस बात का सबूत पेश कर रहा था कि गुज़री हुई सर्द रात को वह रहस्यमय परछाईं वाकई उस इलाके में टहल रही थी। न जाने क्यों पशुपति की आँखों में एक बार फिर वही तीक्ष्ण चमक उभरी, जो तब उभरी थी, जब जमुना ने उसे पहली दफ़ा महल के बारे में बताया था।

कुछ देर तक वह उन घासों और पौधों को घूरता रहा तत्पश्चात ओवरकोट की जेब टटोलकर एक पुराना कागज़ बाहर निकाला, जिस पर अरबी के कुछ शब्द लिखे हुए थे और अँधकार की दुनिया से ताल्लुक रखने वाली अनगिनत रहस्यमयी आकृतियाँ खिंची हुई थीं। कागज़ का पीलापन उसके सैकड़ों साल पुराना होने की गवाही दे रहा था। पशुपति काफ़ी देर तक उन अरबी शब्दों और आकृतियों में खोया रहा इसके बाद उसने गहरी साँस लेकर चेहरा ऊपर उठाया और आस-पास देखकर ये सुनिश्चित किया कि किसी की निगाहों में तो नहीं है। जब आश्वस्त हो गया तो सूखी हुई घासों के साथ-साथ चल पड़ा।

तकरीबन एक घंटे की पदयात्रा के बाद वे घासें उसे जंगल से बाहर एक खुले स्थान पर लेकर पहुँची, जो तीन ओर पहाड़ों से और चौथे ओर उसी जंगल से घिरा हुआ था, जिसके छोर पर खड़ा पशुपति इस क्षण उसकी शून्यता को निरख रहा था। यूँ निरख रहा था जैसे उसकी सदियों पुरानी किसी तलाश का अंत अभी-अभी हुआ हो।

“मिल गया...।” आँखों में पूर्ववत् तीक्ष्ण और रहस्यमयी चमक लिए हुए उसने खुद से कहा- “आखिरकार मिल ही गया।”

N

राजनगर, वर्तमान।

विनायक की वीभत्स लाश बैठक में पड़ी हुई थी। उसके बदन पर चाकू से काटे जाने के बेशुमार जख्म थे और कपड़े भी तार-तार व खून से सने हुए थे। लाश के इर्द-गिर्द लहू का तालाब बना हुआ था, जो अब सूख चला था। हत्यारे ने अपने शिकार के चेहरे को भी नहीं बख्शा था, आँखें तक निकाल ली थी उसकी और शरीर के उन हिस्सों के साथ भी दरिंदगी से पेश आया था, जिसे नाजुक अंगों की फेहरिस्त में शुमार किया जाता है। आला-ए-क़त्ल के तौर पर सब्जी काटने वाला रक्तरंजित चाकू करीब ही पड़ा हुआ था।

फाह्याज़ ने बैठक में चारों ओर निगाहें घुमाई और पाया कि वहाँ संघर्ष के कोई निशान नहीं थे, सिवाय इसके कि सेंटर टेबल और एक सोफ़ा अपनी जगह से खिसका हुआ था। पोर्टेबल लैंप भी जमीन पर पड़ा हुआ था, जो अभी तक जल रहा था लेकिन बेहद धीमा, शायद डिस्चार्ज होने की कगार पर था। सेलफोन सेण्टर टेबल पर था। फॉरेंसिक एक्सपर्ट अपने काम में जुटे हुए थे।

“ये अजीब नहीं है....।” फाह्याज़ ने एस.आई. सुबोध आचार्य से मुखातिब होकर कहा- “कि इस काम को सब्जी काटने वाले चाकू से अंजाम दिया गया? जबकि देखकर ऐसा लगता है कि मरने वाले को कसाई के छूरे से जिबह किया गया है।”

“फिलहाल तो बतौर वेपन हमारे सामने यही है सर। किचन में आधी कटी हुई सब्जी भी पड़ी हुई है। मरने वाले ने शायद ही सोचा रहा होगा कि जिस चाकू से वह सब्जियां काट रहा है, उसी चाकू से कुछ ही देर में उसे भी काट दिया जायेगा।”

“ये पोर्टेबल लैंप ऑन क्यों था? कल रात सोसाइटी की लाइट नहीं थी क्या?”

फाह्याज़ के सवाल की प्रतिक्रिया में सुबोध ने एक कांस्टेबल को कुछ इशारा किया। इशारा पाकर कांस्टेबल बाहर खड़े लोगों से इस बाबत पूछताछ करने चला गया।

“हत्या की खबर कैसे लगी?”

“दूधवाला आया था। उसी ने सबसे पहले ड्राइंग रूम में लाश देखी और शोर मचाकर सबको सूचना दी।”

“यानि कि दरवाजा अंदर से खुला हुआ था।” फाह्याज़ की नेत्र संकुचित हुए।

“दूधवाले ने अपने बयान में यही कहा है।”

फाह्याज़ ने दरवाजे पर एक नजर डाली और फिर टहलते हुए बाल्कनी की ओर बढ़ा। सुबोध भांप गया कि उसका सीनियर किस फ़िराक में है।

“फोर्स्ड एंट्री के कोई साइन नहीं हैं।” उसने कहा- “और न ही कोई सामान गायब लगता है। सब कुछ एज इट इज है।”

“सोसाइटी में लगे सारे कैमरों की फुटेज निकलवाओ।”

“इस काम के लिए पहले ही एक आदमी को भेज रखा है।”

“और पड़ोसियों के बयान?”

“कुछ के लिए हैं।” सुबोध ने सेलफोन बाहर निकाला- “सुनेंगे?”

“समराइज कीजिए, जरूरत महसूस हुई तो सुन लूंगा।”

“मकतूल का नाम विनायक शुक्ला है। सिंगल था। ‘राजर्षि हायर सेकेंडरी स्कूल’ में क्लर्क था। सोशल नहीं था सो लोगों से बहुत ज्यादा कांटेक्ट नहीं रखता था। किसी से लड़ाई-झगड़ा या झड़प छोडिए, मामूली बातचीत के अलावा सोसाइटी में किसी से इसका कोई राबता भी नहीं था। वर्कप्लेस और फॅमिली मैटर की बाबत अभी कोई जानकारी हमारे पास नहीं है। अलग-बगल के लोगों ने कल रात ऐसा कोई संकेत नहीं भाँपा था, जिससे उन्हें एहसास हो पाता कि पड़ोस के फ्लैट में कोई हलचल हो रही है। दूधवाले के आने तक किसी को नहीं पता था कि विनायक इज नो मोर।”

“कुछ चोरी नहीं हुआ है, फोर्स्ड एंट्री का कोई साइन नहीं है, स्ट्रगल के कोई निशान नहीं, दरवाजा खुला हुआ था, क़त्ल वहशियाना तरीके से हुआ है, साधारण चाकू से हुआ है।” फाह्याज़ अपनी धुन में बड़बड़ाता हुआ बोला- “कौन कर सकता है?”

“रंजिश या किसी दूसरे मोटिव के तहत क़त्ल की तमाम वारदातें होती हैं लेकिन ऐसी वीभत्सता और ऐसा तरीका शायद ही देखने में आता है।”

“पर अब हमारे देखने में आ गया है तो देखना तो होगा ही न आचार्य जी।” फाह्याज़ ने काम पर लगे फ़ॉरेंसिक एक्सपर्ट पर दृष्टिपात करते हुए कहा- “रिपोर्ट्स आने तक शुक्ला जी की कुण्डली निकालिए, फिर देखते हैं।”

“श्योर सर।”

सहसा फाह्याज़ लाश में कुछ नोटिस करके ठिठका तत्पश्चात सुबोध की ओर अपनी हथेली फैला दी।

प्रतिक्रिया में सुबोध ने जेब से लेटेक्स ग्लव्स निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया। फाह्याज़ ने उसे हाथ पर चढ़ाया और लाश के पास पाँव के पंजों के बल बैठ गया। हालाँकि शर्ट के चिथड़े हो चुके थे लेकिन फिर भी हत्प्राण के सीने पर उसे जो नजर आया था, उसे पूरा देखने के लिए वहाँ मौजूद शर्ट के हिस्से को इधर-उधर खिसकाना पड़ा। और फिर जो कुछ नजर आया, उसने फाह्याज़ के साथ-साथ उसके मातहत को भी ये एहसास करा दिया कि मामला आम क़त्ल से अलग था।

“व्हाट द हेल इज दिस?” सुबोध ने आँखों में हैरत लिए हुए बुरा सा मुँह बनाया। लाश के सीने पर जख्म की शक्ल में एक अजीब सा निशान बना हुआ था, जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं।

“टैटू तो नहीं लग रहा है।” फाह्याज़ उस निशाननुमा जख्म का बारीक निगाहों से मुआयना करता हुआ बोला- “हत्यारे ने ही अपने सिगिल के तौर पर ये ठप्पा लगाया है क्योंकि चाकू से ये निशान इतनी नफासत से बनने से तो रहे।”

“हाँ मैंने भी एक बार गाँव के मेले में एक रुपया देकर हथेली पर मेंहदी का ठप्पा लगवाया था।”

सुबोध के उदाहरण पर फाह्याज़ ने उसे घूरा।

“मेरा मतलब है कि ये देखकर उसी की याद आ गयी।”

“हाँ वैसा ही।” फाह्याज़ ने सहमति में सिर हिलाया और फिर सेलफोन निकालकर उस निशान की कई फोटो क्लिक कर डाली।

“ये किसी कल्ट का मेम्बर तो नहीं था?”

“जरूर रहा हो सकता है क्योंकि जो ऊपर से शांत नजर आते हैं, जाहिर तौर पर किसी से संपर्क नहीं रखते हैं, वो अक्सर अपने अंदर गहरे राज़ समेटे होते हैं।”

बिजली गुल होने से सम्बंधित तफ्तीश करने गया कांस्टेबल लौटा तो सुबोध ने उस पर सवालिया निगाह डाली।

“सोसाइटी की बिजली बराबर थी सर।”

कांस्टेबल का जवाब सुनकर फाह्याज़ की निगाहें बरबस ही फ्लैट के दरवाजे के पास दीवार में बने छोटे से चैम्बर पर चली गयीं, जहाँ एमसीबी इन्स्टाल्ड था और जिसके दरवाजे पर ताला था।

“इन्हें ताकीद कर देना....।” उसने काम में लगे फिंगरप्रिंट्स एक्सपर्ट्स की ओर संकेत करते हुए कहा- “कि एमसीबी बॉक्स के पास ट्रेसेज मिल सकते हैं।”

“श्योर सर।”

“काम ख़त्म करके लाश को पोस्टमार्टम के लिए भिजवाइए।”

सुबोध ने सहमति में सिर हिलाया और बाकी की औपचारिकताओं को पूरा करने में मशरूफ हो गया।

N

कामरान ने दरवाजे को बंद किया और उससे पीठ टिकाकर लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगा। उसकी विफलता उसके चेहरे के जर्रे-जर्रे पर इबारत की शक्ल में लिखी हुई दिखाई दे रही थी। वह अभी-अभी राजनगर से इस मालूमात के साथ लौटा था कि विनायक शुक्ला अब इस दुनिया में नहीं था। वह उसे चाहकर भी नहीं बचा पाया था, इसीलिए इस अफ़सोस के साथ वह काफी देर तक दरवाजे से लगा खड़ा रहा कि अगर विनायक की पिछली रात सकुशल गुजर गयी होती और आज उससे उसकी मुलाक़ात हो जाती तो वह उसे ये यकीन दिलाने में कामयाब हो जाता कि उसके साथ कुछ अनहोनी होने वाली है। तब शायद आने वाले दिनों की तस्वीर कुछ और होती लेकिन कामरान ये नहीं जानता था कि विनायक बगैर मुलाकात के ही उसकी बातों पर यकीन करने लगा था। ये बात जुदा थी कि कोशिशों के बावजूद वह अपनी मौत को टाल नहीं पाया था।

“पहली बार मुझे मौक़ा मिला था लेकिन मैंने गँवा दिया।” वह बेचैन लहजे में बड़बड़ाते हुए कमरे में इधर-उधर विचरने लगा- “मैं अपने शाप से हार गया। मैं ही वजह हूँ इन मौतों की। ना मैं चित्रकार होता, ना कुछ बदनसीब लोगों की शक्लें बनाता और ना ही वो समय से पहले मरते।”

वह दोनों कुहनी स्टडी टेबल पर टिकाकर, सिर थामकर बैठ गया। काफी देर तक उसी अवस्था में बैठा रहा लेकिन इस अपराधबोध से उबर नहीं पाया कि विनायक की मौत उसके कारण हुई है। इस बीच किसी क्लाइंट की कॉल भी आयी लेकिन उसने अटेंड नहीं की। जब लम्बा वक्त गुजर गया तो वह उस ईजल की ओर बढ़ा, जिस पर दस दिन पहले बनाई हुई विनायक की तस्वीर अभी भी लगी हुई थी। उसने तस्वीर को उतारा, रोल किया और उस जगह पर रख दिया, जहाँ पहले से ही कई पेंटिंग्स रोल करके रखी हुई थीं।

“क्या करूँ मैं?” कामरान पर बेचैनी फिर से तारी हो गयी- “कैसे पीछा छुडाऊँ इस मनहूसियत से?”

सवाल कई थे लेकिन जवाब किसी का नहीं था उसके पास।

N

हसीनाबाद, सन 1975।

जब जमुना पशुपति के कमरे की चौखट पर पहुँचकर थमा तो वह एक लिफ़ाफ़े को बंद कर रहा था। ‘रूपांतरण’ मेज पर रखा हुआ था।

“आपने बुलाया था साहब?” जमुना ने पूछा।

“इस लिफ़ाफ़े को पोस्ट कर दीजिए।” पशुपति ने जमुना की ओर देखे बगैर कहा।

जमुना भीतर दाखिल हुआ और लिफ़ाफ़े को थामने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ा दिया मगर पशुपति ने उसे तुरंत लिफ़ाफ़ा नहीं थमाया। लिफ़ाफ़े को सील करने के बाद कई दफे उसे घुमा-फ़िराकर देखा और जब इस बात के प्रति आश्वस्त हो गया कि बगैर उसे खोले उसमें मौजूद ख़त की झलक तक नहीं पायी जा सकती तो उसे जमुना की ओर बढ़ा दिया।

“ध्यान रहे..।” उसने कठोर मुखाकृति लिए हुए सख्त लहजे में कहा- “किसी भी सूरत में ये खुलना नहीं चाहिए। पोस्ट होने तक अपनी जान से भी बढ़कर
इसकी हिफ़ाजत कीजिएगा।”

पशुपति का बदला हुआ तेवर देख जमुना थोड़ा हकबकाया। मन में ये ख्याल भी आया कि ख़त अगर इतना ही गोपनीय है तो सामने वाला उसे खुद पोस्ट करने क्यों नहीं चला जाता लेकिन प्रत्यक्ष में उसने सेवक सुलभ शालीनता के साथ ‘जी साहब’ कहकर लिफ़ाफ़ा थाम लिया।

N

उस इंसान की उम्र पचास साल से अधिक थी, जो सिटी मोर्ग हाउस के सामने खड़ा होकर साइनबोर्ड पर लिखे हर्फों को पढ़ रहा था। उसने घुटनों तक लटकता सफ़ेद कुर्ता और पायजामा पहन रखा था। उसकी मूंछ सफाचट थी और सफ़ेद दाढ़ी गले तक लटक रही थी। उसके चेहरे पर काबिज सख्ती के कारण न्यून आत्मविश्वास वाला इंसान शायद ही बिना हकलाये उससे बात कर सकता था। उसके माथे पर एक निशान था, जो पाँचों वक्त का नियमित नमाज अदा करने वाले मोमिनों को स्वत: ही हासिल हो जाता है। उसके हाव-भाव में एक अजनबियत थी। मोर्ग के साइनबोर्ड को निरखते हुए वह देश-दुनिया से बेखबर हो गया मालूम पड़ता था। कुछ देर तक वह उसी अवस्था में खड़ा रहा और फिर दाढ़ी सहलाता हुआ मोर्ग के एंट्रेंस की ओर बढ़ गया।

अंदर पहुँचकर वह थमा। किस दिशा में जाना चाहिए; ये निर्धारित करने के लिए इधर-उधर देखने लगा।

“क्या काम है मियाँ?”

आदमी की गर्दन उस दिशा में घूम गयी, जिस दिशा से उपर्युक्त सवाल आया था। सवाल करने वाला लापरवाह सा दिखने वाला एक गार्ड था, जो दांतों तले खैनी दबाए हुए था। मोर्ग में दाखिल हुआ आदमी उसके सवाल का जवाब देने के बजाय उसे ध्यान से घूरता रहा।

"आपसे ही पूछ रहे हैं साहब, कोई बॉडी क्लेम करने के लिए आये हैं?"

"एक मरहूम के बारे में पूछताछ करनी है।" आदमी ने सर्द लहजे में कहा।

उसकी आवाज और भाव-भंगिमाओं को देख आदमी सशंकित हुआ, अपनी जगह से उठकर उसके करीब पहुँचा।

"मरने वाले के क्या लगते हैं आप?" उसने दोनों हाथ कमर पर टिकाते हुए पूछा।

"कुछ नहीं।" बूढ़े ने भावहीन उत्तर दिया।

"फिर वास्ता क्या है उस मरहूम से?"

"वास्ता है।" इस बार बूढ़े का लहजा पत्थर की भांति सख्त था- "क्या है, ये तुम नहीं समझोगे।"

"लाश किस मामले में यहाँ लाई गयी है?"

"तुम लोगों ने उसके मामले को क़त्ल के मामलों में दर्ज किया होगा।" इस जवाब ने गार्ड को और भी आशंकित कर दिया जबकि बूढ़े ने आगे कहा- "उसका जिस्म चाकुओं से छलनी होगा। बहुत दर्द झेलने के बाद इस दुनिया से रुख्सत हुआ होगा।"

"आयी है।" गार्ड ने एकदम से मुँह खोला- "दो घंटे पहले ही आयी है। चेतना अपार्टमेंट में क़त्ल हुआ है उसका। अब पूछिए, क्या पूछना है?"

खामोश होने के बाद गार्ड ने अपनी निगाहें बूढ़े के नूरानी चेहरे पर टिका दीं। बूढ़ा पहले उसे घूरता रहा, फिर बोला- "उस लाश को देखना है हमें।"

"ऐसा कैसे हो सकता है मियाँ? क़त्ल का मामला है। ऊपर से मरने वाले के साथ आपका कोई वास्ता भी नहीं है।"

"उस मुर्दे से वास्ता नहीं है...।" बूढ़े ने दांत पर दांत जमाते हुए सर्द लहजे में कहा- "लेकिन उससे जुड़े कई मामलात में हमारी दखल है। हमें देखने दो उसे वरना कुछ ऐसा होगा, जो तुमने या किसी और ने कभी ख्वाब में भी नहीं सोचा होगा।"

"आप...आप हैं कौन?" इस बार गार्ड हकलाये बिना नहीं रह सका।

जवाब में बूढ़े ने कुछ नहीं कहा, बस उसे घूरता रहा। उसकी भूरी आँखों में ऐसे अजनबी भाव थे कि गार्ड को अपना हलक शुष्क होता महसूस होने लगा।

"कोई पीर फ़कीर तो नहीं हैं?" कुछ देर बाद उसने नए ढंग से पुराना सवाल दोहराया।

बूढ़े ने गर्दन को हल्की सी जुम्बिश दी और पलकों को धीरे से झपकाया। उसका जवाब 'नहीं' था।

गार्ड फिर से तरद्दुद में दिखाई देने लगा।

“कहाँ रखे जाते हैं मुर्दे?” बूढ़े ने पूछा।

“देखिए....आप ऊपर से कुछ लिखवाकर लाइए, ये मेरे अख्तियार से बाहर की बात है।”

“ऊपर जाने की सीढ़ी कहाँ है?” बूढ़े ने इधर-उधर निगाहें घुमाईं।

“मेरा मतलब है कि इस मामले से जुड़े किसी साहब से परमिशन लेकर आइए।”

“जैसे?” बूढ़े के नेत्र संकुचित हुए।

“जैसे कि तहकीकात कर रहे पुलिस इंस्पेक्टर।”

बूढ़े ने कुछ नहीं कहा। उसकी निगाहें गार्ड के चेहरे पर जमी रहीं।

“या फिर आप पोस्टमार्टम तक रुक जाएँ। रिपोर्ट तैयार हो जाने के बाद मैं लाश परिजनों को सौंपे जाने से पहले आपको सूचित कर दूंगा, आप जी भरकर देख लीजिएगा। इससे ज्यादा मैं आपके लिए कुछ नहीं कर सकता।”

“हमें फ़र्ज़ के प्रति ईमानदार लोग बेहद पसंद हैं मगर हमारा यकीन करो, हम ऐसी किसी भी हरकत को अंजाम नहीं देंगे, जो तुम्हारी नौकरी के जाने का सबब बन सके।”

“आप...आप पोस्टमार्टम तक रुक क्यों नहीं सकते?”

“तब तक देर हो चुकी होगी।”

“तो फिर आप इजाजत क्यों नहीं लेकर आते?”

“कुछ राज़ परदे के पीछे रहते हैं तो ही अच्छे लगते हैं।” यकायक बूढ़े का लहजा रहस्यमयी हो गया- “बाहर आने पर खौफ़ और दहशत की वजह बन जाते हैं।”

गार्ड मुट्ठियाँ खोलने बंद करने लगा, होंठ चबाते हुए इधर-उधर देखने लगा।

“मुर्दे कहाँ रखे जाते हैं?”

बूढ़े के सवाल से उसकी तन्द्रा भंग हुई।

“आ...आइए...मेरे साथ।” गार्ड ने राहदारी की ओर इशारा करते हुए कहा।

P

3

हसीनाबाद, सन 1975।

जमुना ने बग्घी रोक दी। डाकखाना रेलवे स्टेशन के पास था, जहाँ पहुँचने में अभी वक्त था। बस्ती पीछे छूट चुकी थी और फिलहाल उस जगह पर वीरानी के सिवाय और कुछ नहीं था। वातावरण में खामोशी थी। कुहरा इतना घना था कि सामने बह रही नदी, जो महज़ कुछ गज के फासले पर थी, स्पष्ट नहीं दिखाई दे रही थी। उस पर बने छोटे से पुल की भी महज़ आकृति दिखाई दे रही थी। नदी के उस पार जंगल का सिलसिला कई किमी तक फैला हुआ था, जिसे पार किये बिना, पहाड़ों और जंगल के दामन में बसे उस छोटे मगर ख़ूबसूरत कस्बे से बाहर नहीं निकला जा सकता था।

जमुना ने अपनी छाती टटोली। स्वेटर के नीचे शर्ट की जेब में पशुपति का खत सुरक्षित था। उसने अधरों पर जुबान फेरी और व्यग्र भाव से इधर-उधर देखा। सब कुछ घने कुहरे में जर्फ़ था। हथेलियों को रगड़कर बदन में गर्मी का संचार करने के बाद उसने ख़त बाहर निकाल लिया।

‘ध्यान रहे, किसी भी सूरत में ये खुलना नहीं चाहिए। पोस्ट होने तक अपनी जान से भी बढ़कर इसकी हिफ़ाजत कीजिएगा।’

ख़त को हाथ में लेकर मन ही मन पशुपति की चेतावनी याद करते हुए वह कुछ विचार करने लगा। थोड़ी देर के मनन के बाद उसने पतलून की जेब टटोली, जिसमें मौजूद चीजों की बदौलत वह ख़त को दोबारा बंद कर सकता था।

‘अगर कुछ नगद नहीं भी मिलेगा तो भी ये तो पता चलेगा कि कस्बे में आया वह रहस्यमयी अजनबी भेज क्या रहा है, जिसे किसी की निगाह में नहीं आने देना चाहता है। इतनी सर्दी में यहाँ मुझ पर नजर रखने वाला है ही कौन। ख़त को दोबारा सील करने का सामान भी साथ है।’

उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद उसने एक बार फिर एहतियात के तौर पर आस-पास देखा तत्पश्चात लिफ़ाफ़े का मुँह इस सावधानी के साथ खोलने लगा कि बाद में उसे जस का तस बनाया जा सके।

“मना किया था न तुझे हरामखोर?”

पशुपति का ठण्डा स्वर कानों में जाते ही पहले जमुना भय से जड़ हुआ फिर धीरे-धीरे सामने की ओर दृष्टि उठायी। कुछ ही कदमों के फासले पर वह खड़ा था। उसका वहाँ होना जमुना को उतना हौलनाक नहीं लगा, जितना हौलनाक उसके चेहरे के भाव लगे। वह उसे

यूँ घूर रहा था, जैसे कोई भूखा वहशी जानवर अपने शिकार को घूर रहा हो। उसके नथुने फड़क रहे थे, आँखें आग उगल रही थीं और कानों के पास जबड़ों का उभार साफ़ दिख रहा था। वह अब तक जमुना के साथ सम्मानजनक संबोधन के साथ पेश आया था इसलिए जमुना ने सोचा नहीं था कि सभ्य नजर आने वाला वह इंसान अपशब्दों का प्रयोग करना भी जानता है। कुल मिलाकर उस पर मनोवैज्ञानिक असर ये हुआ कि उसे सामने खड़ा पशुपति वह पशुपति नहीं लगा, जिसे वह पिछले कुछ दिनों से जानता था बल्कि वह पशुपति लगा, जो अब पाशविक प्रवृत्ति को अपना चुका था। उसके अंदर से जो दूसरा पशुपति निकला था, उसके नाम का अर्थ वास्तविक अर्थ से नितांत भिन्न था।

जमुना ने खौफजदा होकर ख़त पर नजर डाली। हालाँकि उसने ख़त को खोलने के ध्येय से हाथ भर लगाया था, उसे अब तक खोला नहीं था मगर इस पल उसका लिफ़ाफ़ा खुला हुआ था।

“म..मैंने..मैंने...इसे नहीं खोला है साहब।” वह गिड़गिड़ा उठा।

पशुपति पर कोई असर नहीं हुआ। उसे आगे बढ़ता देख जमुना ने बग्घी को भगाने की कोशिश की लेकिन घोड़े हिनहिनाकर रह गए, आगे नहीं बढ़े।

“पैसे चाहिए थे तो पहले क्यों नहीं बोला?” पशुपति ने उसकी गर्दन को पंजे में जकड़ा और बग्घी से उठाकर हवा में लटका दिया।

जमुना के हलक से घुटी-घुटी सी आवाज़ आने लगी। हाथों से पशुपति का पंजा छुडाने की कोशिश करते हुए, पाँव झटकते हुए वह यूँ छटपटाने लगा, जैसे फांसी के फंदे पर लटका आदमी अंतिम क्षणों में छटपटाता है। ज्यों-ज्यों उसकी छटपटाहट बढ़ती गयी, त्यों-त्यों पशुपति की आँखों में खून उतरता गया। जल्द ही वह नरपिशाच सदृश दिखाई देने लगा। ठीक उसी पल, जब जमुना की साँसें थमने वाली थीं, उसने उसे दूर उछाल दिया।

पशुपति के फौलादी पकड़ से आज़ाद होते ही जमुना गला पकड़कर खाँसने लगा। उसके बदन का सारा खून चेहरे पर सिमट आया था। भय व आतंक के चलते वह कोशिश करके भी अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाया। जब दहशत से भरे कई क्षण गुजर गए तो सबसे पहले उसकी नजर खून से सनी अपनी हथेलियों पर गयी फिर अगले ही क्षण उसने पाया कि उसका स्वेटर भी तेजी से लाल होता जा रहा था। इसके बाद उसके जेहन में एकमात्र ख्याल यही आया कि उसका गला लहुलुहान हो चुका था। उसने अपनी रक्तरंजित हथेलियों को एक नजर देखा और फिर आतंकित होकर पशुपति के उस पंजे पर दृष्टिपात किया, जिसके शिकंजे में कुछ देर पहले उसका गला था।

पशुपति के नाखून अब इंसानों के नाखून नहीं थे। वे किसी दरिंदे के नाखूनों में तब्दील होकर बड़े और नुकीले हो गए थे, जिनसे ताजा गरम खून टपक रहा था। जमुना के लिए ये हैरत का चरम था। उसने बौखलाकर पशुपति के चेहरे की ओर देखा, जहाँ वीभत्स और डरावनी मुस्कान थी।

“क...कौन...हो तुम...? तुम...इंसान नहीं हो सकते।” जमुना कुहनी के बल पीछे सरकता हुआ घिघियाया।

“तूने उस रात पूछा था न कि नरभेड़िये होते हैं या नहीं?” पशुपति धीमी चाल से उसकी ओर बढ़ा।

जमुना के पीछे सरकने की गति तेज हो गयी। साथ ही वह हथियार के रूप में इस्तेमाल किये जाने लायक वस्तु यथा डंडा, पत्थर इत्यादि की खोज में इधर-उधर भी देखता जा रहा था। सहसा पशुपति ने एक लम्बी छलांग भरी और अपने व जमुना के बीच का फासला पल भर में ही तय कर लिया।

“हाँ...।” उसने जमुना का बाल मुट्ठी में जकड़कर उसका चेहरा अपने चेहरे के नजदीक लाया और उसकी आँखों में आँखें डालकर गुर्राया- “होते हैं; नरभेड़िये होते हैं। ये कोई मिथकीय पशु नहीं हैं। ये महज़ किस्से-कहानियों और अंधविश्वासियों की कल्पना में नहीं बसते हैं। ये हकीकत में होते हैं। पूरे चाँद की रात को असली रूप में आते हैं, इंसानों का शिकार करते हैं और चाँदी के खंजर से डरते हैं।”

“क..क्या..क्या तुम भी उन्हीं में से हो?”

“ठहर, बताता हूँ।”

पशुपति उठा और जमुना को बालों से पकड़कर घसीटते हुए नदी के तट की ओर ले जाने लगा। किनारे पर पहुँचकर उसने उसे औंधे मुँह पटक दिया ताकि वह पानी में अपनी मौत का प्रतिबिम्ब देख सके। यकीनन वह मौत का ही प्रतिबिम्ब था क्योंकि पानी में जो पशुपति नजर आ रहा था, वह इंसान नहीं था। उसके धड़ पर भेड़िये का सिर था। जमुना उस आधे मानव और आधे पशु को दो पल से ज्यादा नहीं देख सका और पलटकर सीधा हो गया।

“देखा?” पशुपति पागलों की तरह हँसा- “ये हूँ मैं।”

“हमारी बस्ती में क्यों आये हो?”

पशुपति की अट्टहास गायब हो गयी। उसका चेहरा पत्थर की मानिंद सख्त हो गया।

“महल की तलाश में आया हूँ।” उसने सर्द लहजे में कहा- “लेकिन लोगों को ये बताने के लिए अब क्या तू जिंदा रहेगा?”

अपने जीवन के आख़िरी दृश्य के तौर पर जमुना बस इतना ही देखा पाया कि नुकीले नाखूनों वाला पशुपति का पंजा तेजी से उसके सीने की ओर बढ़ा था इसके बाद उसने पलकें भींच लीं।

“आ.......ह!” उसकी गगनभेदी चीख से वह जनशून्य इलाका दहल उठा। बग्घी में जुते हुए घोड़े उछलते-कूदते हुए जोर-जोर से हिनहिनाने लगे।

जमुना का पूरा शरीर पसीने से तर था, साँसें तेज थीं और वह हाथ बुरी तरह काँप रहा था, जिसमें उसने लिफ़ाफ़ा थामा हुआ था। सबसे पहले उसने अपनी साँसों को संयत किया

फिर चेहरे के पसीने को आस्तीन से पोंछकर इधर-उधर देखने लगा। पशुपति कहीं नहीं था। सब-कुछ पहले जैसा था। हाँ, खुली आँखों से अपनी मौत का सपना देखने के बाद उसे जरूर अब इस इलाके में डर लगने लगा था।

"य...ये अभी-अभी कैसा ख्वाब देखा मैंने, वो भी जागती आँखों से?"

जमुना ने खौफ़जदा निगाहों से लिफ़ाफ़े को देखा, जिसे खोलने के लोभ का संवरण नहीं कर पाया था मगर अब कर चुका था। उसने लिफ़ाफ़े को फिर से जेब के हवाले किया और घोड़ों को नदी के पुल की ओर हांक दिया।

N

राजनगर, वर्तमान।

उस वक्त रात के दो बजे थे, जब लियाकत के कमरे का दरवाजा जोर-जोर से पीटा गया। उनकी नींद खुली।

"कौन है?" बौखलाकर उन्होंने पूछा।

"म..मैं....मैं हूँ,....।" बाहर से फाह्याज़ की खौफ़जदा आवाज़ आयी।

"फाह्याज़...? इस वक्त?" माथे पर शिकन की बेशुमार लकीरें लिए हुए लियाकत ने पहले कमरे में रोशनी की फिर दरवाजा खोला।

सामने खड़ा बुरी तरह भयभीत फाह्याज़ किसी बच्चे की तरह काँप रहा था। उसके पाँव इस कदर डगमगा रहे थे कि खड़े रहने के लिए उसे दीवार का सहारा लेना पड़ रहा था। पिता को देख उसने दीवार का सहारा छोड़कर अपना पूरा बोझ उनके कंधों पर डाल दिया।

"क्या हुआ...? तुम...तुम इतने डरे हुए क्यों हों?" लियाकत ने उसका भारी-भरकम शरीर संभालने की नाकाम कोशिश करते हुए पूछा।

"मु...मुझे....मुझे शबनम नजर आयी अब्बू।" फाह्याज़ ने लड़खड़ाती जुबान में कहा और किसी ढहती हुई दीवार की तरह फर्श पर बैठ गया।

"य...ये....क्या अनाप-शनाप बक रहे हो तुम?" लियाकत ने एक नजर बिस्तर पर सो रहे हसन पर डाली फिर फाह्याज़ से मुखातिब होकर आगे कहा- "हसन डर जाएगा।"

"मैंने...मैंने...सचमुच उसे देखा।" फाह्याज़ ने लियाकत की दोनों हथेलियों को थामकर उन्हें यकीन दिलाने की भरसक कोशिश करते हुए, अपने लहजे पर जोर देते हुए कहा- "व...वो...बिना कपड़ों की थी और एक बड़े से कटोरे में भरे खून से किसी को नहला रही थी, जो आधा जानवर था।"

"चुप हो जाओ...।" लियाकत ने अपनी हथेली फाह्याज़ के मुँह पर रख दी- "दिमाग खराब हो गया है तुम्हारा। ऐसे ही वाहियात सपने तुम्हें तब भी आते थे, जब हॉस्पिटल में शबनम की मौत हुई थी।"

"मैंने कहा न कि मैंने उसे देखा।" फाह्याज़ ने पिता का हाथ दूर झटका और हसन की नींद खुलने की परवाह किये बगैर तेज स्वर में चीखा- "आप यकीन क्यों नहीं कर रहे हैं?"

कमरे में पिन ड्राप खामोशी छा गयी। लियाकत की निगाहें कई क्षणों तक फाह्याज़ पर ही ठहरी रह गयीं फिर उन्होंने गर्दन घुमाकर हसन पर क्षणिक दृष्टिपात किया, जो अब कमरे में हो रही आवाजों के कारण नींद में कुनमुनाने लगा था।

"वो अजीब सी जगह थी।" इस दफे फाह्याज़ ने गिड़गिड़ाते हुए दयनीय स्वर में लियाकत को यकीन दिलाने की कोशिश की- "चारों ओर वीरानी, खामोशी और सफ़ेद धुंध थी। आस-पास काले साए मंडरा रहे थे, मातमी धुनें सुनाई दे रही थीं। वो इंसान आधा भेड़िया था, जो किसी बड़े से कटोरे में भरा खून शबनम के ऊपर उड़ेल रहा था। वह कोई दूसरी दुनिया थी।"

"हाँ, वह दूसरी दुनिया ही रही होगी....।" लियाकत ने ठंडे स्वर में कहा- "क्योंकि शबनम दूसरी दुनिया में जा चुकी है; मौत के बाद की दुनिया में। जितनी जल्दी तुम इस बात को मान लोगे, उतनी जल्दी तुम्हें इन सपनों से छुटकारा मिल जाएगा।"

"लेकिन...लेकिन मैंने...उसे खुली आँखों से देखा।" फाह्याज़ के चेहरे पर ऐसे भाव नमुदार हुए कि वह सहानुभूति का पात्र नजर आने लगा।

"ख्वाब कभी-कभी खुली आँखों से भी नजर आते हैं।" लियाकत ने उसका कंधा थपथपाते हुए कहा- "भटकना बंद करो बेटे। शबनम जा चुकी है। मौत की अँधेरी राहों में गुम हो चुकी तुम्हारी बीवी किसी भी चिराग की रोशनाई में अब नहीं नजर आ सकती। मैं कल मौलाना साहब से कोई ऐसी ताबीज लेकर आऊँगा, जो तुम्हारे जेहन को शांत रखे ताकि वह इन वाहियात ख्यालों की गिरफ्त में न आ सके।"

लियाकत उठे और बेडसाइड टेबल पर रखे जग का पानी गिलास में उड़ेलकर वापस लौटे।

"जाओ, सो जाओ।" उन्होंने गिलास फाह्याज़ की ओर बढ़ाते हुए कहा- "रात बाकी है, अभी केवल दो बजे हैं।"

फाह्याज़ कुछ कहना चाहता था लेकिन जब उसने देखा कि हसन उठकर बैठ चुका है तो उसने खामोशी से गिलास थामा और खाली करके लियाकत को लौटा दिया।

"मैं तुम्हें कमरे तक छोड़ दूँ?"

"नहीं।" उसने उठते हुए कहा- "मैं चला जाऊंगा, शुक्रिया।"

लियाकत तब तक दरवाजे पर ही खड़े रहे जब तक फाह्याज़ अपने कमरे में नहीं चला गया तत्पश्चात दरवाजा बंद करके बिस्तर पर आ गए। उनके चेहरे पर तनाव था। जेहन किन्हीं गहन विचारों में उलझा हुआ था।

"क्या अम्मी ज़िंदा है दादाजान?" हसन के सवाल से उनकी तंद्रा भंग हुई।

"नहीं।" लियाकत ने लिहाफ़ उसके धड़ तक खींचते हुए जवाब दिया।

"फिर वो अब्बू को क्यों नजर आती है?"

"तुम्हारे अब्बू को वो ख्वाब में नजर आती है।"

“तो मेरे ख्वाब में क्यों नहीं आती? मुझे उसे देखना है। उससे बातें किये हुए बहुत दिन हो गए हैं।”

लियाकत ने कुछ देर तक हसन के मासूम चेहरे को देखा फिर कहा- “मरे हुए लोगों का ख्वाब में आना अच्छा नहीं होता है हसन।”

“क्यों?”

“क्योंकि वो रूहानी दुनिया की बलाएं अपने साथ ले आते हैं। चलो अब अल्लाह मियाँ का नाम लो और सो जाओ।” लियाकत ने खुद भी लिहाफ़ धड़ तक खींच लिया और सोने का उपक्रम करने लगे।

हसन ने आँखें बंद तो कर लीं मगर इस तमन्ना के साथ कि ख्वाब में उसे भी माँ नजर आयेगी।

N

हसीनाबाद, सन 1975।

“तेरा मुँह क्यों उतरा हुआ है?” कुक्कू ने जमुना से पूछा, जो बग्घी पर बैठा, स्टेशन से निकल रहे मुट्ठी भर लोगों को देख रहा था। जब उसने कोई जवाब नहीं दिया तो कुक्कू ने भी उन यात्रियों पर एक नजर डाली फिर कहा- “ये स्टेशन वैसे भी वीरान है, ऊपर से ठण्ड का मौसम; ऐसे में सवारियों की किल्लत कोई नयी बात नहीं है। ये तू भी जानता है, फिर थोबड़ा क्यों लटकाये हुए है? जा देख, वो साहब कहाँ जायेंगे। अगर जाने वाले होंगे तो तू ले जा उन्हें, मैं दूसरी सवारी देखता हूँ।”

रेलवे स्टेशन से सवारी ढोने वाली नियमित बग्घियों की संख्या बहुत कम थी।
वजह वही थी, जो कुक्कू अभी-अभी बयां करके हटा था। यूँ तो हर बग्घी वाला ‘कमाओ और कमाने दो’ के नियम से बंधकर सौहार्दपूर्ण धंधा करता था लेकिन कुक्कू और जमुना में दांत काटी रोटी थी।

“मेरे परेशान होने की वजह कुछ और है कुक्कू।” जमुना ने गहरी साँस लेकर वर्तमान में वापसी की।

“क्या हो गया? परिवार में फिर कोई लफड़ा हुआ क्या?”

“नहीं।” जमुना यात्रियों से निगाहें फेरकर कुक्कू से मुखातिब हुआ- “अच्छा एक बात बता।”

“पूछ।”

“नरभेड़िये होते हैं न?”

“क्यूँ नाम ले रहा है?” कुक्कू ने रोनी सूरत धारण करके कहा- “रात को जंगल पार करके घर जाना होता है। इस तरह की बातें याद आएंगी तो नरभेड़िया मारे या न मारे; उसका डर जरूर मार देगा हमें।”

“यानी तू भी उन्हें मानता है?”